खंड 4
सामाजिक पहचान और परिवर्तन

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 दलित आंदोलन*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 दलित आंदोलन : मुद्दे और चुनौतियां

- 8.2.1 'दलित' शब्द का अभिप्राय
- 8.2.2 सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- 8.2.3 छुआछुत का सामाजिक चलन
- 8.2.4 ब्राह्मणवादी हिन्दुत्व
- 8.2.5 वैकल्पिक धार्मिक आंदोलन

8.3 सामाजिक सुधार के आंदोलन

- 8.3.1 मुद्रण (छपाई) का उद्भव और सार्वजनिक क्षेत्र

8.4 दलित नेता और दलित आंदोलनों के विभिन्न चरण

- 8.4.1 ज्योतिबा फुले और दलित सुधार आंदोलन
- 8.4.2 डॉ. भीम राव अम्बेडकर और उनका आंदोलन
- 8.4.3 पेरियार और जन आंदोलन
- 8.4.4 अन्य आंदोलन

8.5 दलित आंदोलन का संक्षिप्त अवलोकन

8.6 सारांश

8.7 संदर्भ

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'दलित' शब्द का अभिप्राय और दलित आंदोलन के बारे में बता सकेंगे;
- भारत में दलित आंदोलनों के विभिन्न चरणों और उनके स्वरूपों की विवेचना कर पाएंगे,
- दलित नेताओं को पहचानने और उनके योगदान से अवगत हो सकेंगे; और
- दलित विद्रोह के आधारभूत और सांस्कृतिक कारणों को विश्लेषित कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

यह खंड चार : सामाजिक विचारधाराओं और बदलाव, दलित आंदोलन की पहली इकाई है। इसके पहले के खंडों में आपने सामाजिक संस्थानों; जैसे परिवार, विवाह और कुटुम्ब तथा धर्म के बारे में जाना-समझा है।

यह इकाई आपको भारत में दलित आंदोलनों के बारे में अवगत करता है। क्या आप जानते हैं कि दलित आंदोलन, किसी अन्य आंदोलन की भांति, सचेत रूप से संगठित है और वे आम नागरिकों के सामूहिक प्रयासों की निरंतरता हक परिणाम है।

*डॉ. रितु सिन्हा, जामिया मिलिया इस्लामिया/अनु. विजय शर्मा

यह इकाई दलित आंदोलन के ऐतिहासिक उद्भव, स्वतंत्रता पूर्व से लेकर बाद के काल खंड में हुए इनके विकास और उनके परिणामों के विश्लेषण के जरिये आपको दलित आंदोलन का अभिप्राय समझाने का एक प्रयास है। यह सामाजिक न्याय और हमारे समाज की आधारभूत संरचना में मूलभूत बदलाव को लेकर दलित की मांगों और उनके संघर्ष के बारे में बताता है। इस प्रयोजना के लिए प्रस्तुत इकाई को तीन खंडों में विभाजित किया गया है। दलित आंदोलनों के मुदे और कारणों को भली-भांति समझाने के लिए आपको सबसे पहले हम इसकी ऐतिहासिक यात्रा पर ले चलते। यह ऐतिहासिकता 'दलित' शब्द का अभिप्राय बताती है और 'हरिजन' जैसे अन्य शब्द के मायने से परस्पर तुलना में उसकी प्रासंगिकता को रेखांकित करती है। दूसरा खंड उन नेताओं के बारे में है, जिन्होंने दलित मुद्दों को प्रमुखता से उठाया और इस तरह आंदोलन का मार्गदर्शन किया। इन नेताओं के नतृत्व में दलित आंदोलन एक चरण से दूसरे में प्रवेश करता हुआ प्रासंगिक बना रहा। अंत में, यह खंड आंदोलन के विभिन्न आयामों, इसकी बौद्विक संवृद्वि और संरचना में बदलावों पर फोकस करेगा।

8.2 दलित आंदोलनः मुद्दे और चुनौतियां

समकालीन भारत में, दलित अब भी छुआछूत का देश झेलते हैं और वे लगातार भयानक सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक असमानताओं का सामना करते हैं (शाह; 2004)

पीढ़ियों से दलित संपत्ति, सत्ता और सामाजिक स्वीकार्यता या सामाजिक हैसियत से वंचित रहे हैं। क्या आप यह जानते हैं कि दलितों के विरूद्व अत्याचार का सर्वाधिक हिंसक रूप देखने को मिलता है, जबकि आजाद भारत में अस्पृश्यता का वैधानिक रूप से उन्मूलन कर दिया गया है? दलित आंदोलन ऐसे ही अत्याचारों के विरूद्व दलित और गैर-दलितों दोनों के सबल प्रतिरोध हैं। प्रारंभ में, दलित आंदोलन अस्पृश्यता/छुआछूत और इस प्रथा पर आधारित होने वाले सामाजिक भेदभाव के विरूद्व संगठित संघर्ष रहे है। इसलिए दलित विद्रोह को समझने के लिए 'दलित' शब्द के मायने को समझना अत्यावश्यक है।

8.2.1 'दलित' शब्द

आज आम बोल चाल में, दलित अधिकांशतः प्रशासनिक स्तर पर गढ़े गये शब्द 'अनुसूचित जातियों (एस.सी-(SC) तक ही सीमित है, जबकि आधिकारिक रूप से इसमें अनुसूचित जातियां और अन्य पिछडी जातियां भी समाहित हैं। तात्कालीन ब्रिटिश सरकार भारत के अस्पृश्यों के लिए 1935 में एससी (SC) शब्द का उपयोग करती थी। इसके पहले 1919 में वह उन्हें शोषित-पीड़ित जातियां कहती थी।

सामान्य रूप से, दलित शब्द का उपयोग समाज के हाशिये पर पड़े उन तमाम गरीब, भूमिहीन किसान, महिलाएं, आदिवासियों, कामगारों के लिए किया जाता है। इसके साथ-साथ, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक रूप से शोषित लोगों के लिए भी दलित शब्द का उपयोग किया जाता है। इस तरह से, दलित का मतलब समाज में निम्न जाति का व्यक्ति, पद दलित और पहले की एक अस्पृश्य जाति है। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह कि 'दलित' शब्द उस प्रक्रिया को विश्लेषित करता है, जिसके जरिये दलित स्वयं इसकी पहचान करते हैं कि उनके साथ हरेक स्तर पर भेदभाव किया जाता है और इस खातिर वे खुद के लिए एक अलग पहचान की मांग करते हैं।

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि मराठी लेखकों ने 1960 के दशक में ही ''अछूत'' या ''हरिजन'' के बदले ''दलित'' शब्द का प्रस्ताव दिया था, जिसका मराठी में मतलब होता

है– टूटा हुआ/बिखरा हुआ। ''हरिजन'' शब्द महात्मा गांधी ने दिया था, जिसका अर्थ ''भगवान की संतान'' होता है। इसी आधार पर उन्होंने हिन्दू जातियों से अछूतों के प्रति अपने संकीर्ण दृष्टिकोण और अमानवीय व्यवहार बदलने का आहवान किया था और ''अन्त्यज'' की जगह ''हरिजन'' शब्द का उपयोग किया था। अम्बेडकर ने 'अछूत' की जगह 'पद दलित' शब्द दिया था। इन्हें बहिष्कृत, निष्कासित जाति और शोषित जाति भी कहा गया, लेकिन धीरे-धीरे इनके लिए दलित शब्द का चलन से हरिजन शब्द क्रमशः अलोकप्रिय होता चला गया और अब तो उसका कोई नामलेवा भी नहीं रहा। इसकी जगह पर 'दलित' शब्द राजनीतिक पहचान और दावे के एक ठोस रूप में सामने आया, जब 'दलित' शब्द लोकप्रिय होता गया और अब धड़ल्ले से इसका उपयोग होता है। अब यह पिछडी जातियों और अस्पृश्यों में अनुरूपता पर जोर देता है तथा इन समूहों के अनुभवों में समानता पर फोकस करता है (भट्टाचार्य, 1995)। विगत कुछ दशकों में दलित शब्द शोषित जन के ताकतवर प्रतीक के रूप में उभरा है, जो ऊंची जातियों के वर्चस्व और सामाजिक भेदभाव की दमनकारी संरचनाओं के विरूद्व डटकर खड़ा है।

दलित शब्द पुरातन काल से मानवीय अस्तित्व के लिए बुनियादी आधिकारों से वंचित कर दिये गये और दमनकारी अतीत एवं वर्तमान को बदलने के लिए प्राणपण से संघर्षरत लोगों को दर्शाता है। मुक्तिकामी दलित संघर्ष के प्रक्षेपन पथों को देखते हुए अनुपमा राव ने (2009-23) ने सही समझा है कि दलित हमारे लोकतांत्रिक राष्ट्र में राजनीतिक रूप से अल्पसंख्यक, हिन्दू अनुक्रम में गैर-हिन्दू की भांति परस्पर विरोधी संबंध में नकारात्मक रूप से परिभाषित है।

संवैधानिक प्रावधान

अनुसूचित जातियों के चहुंमुखी विकास में भारतीय संविधान ने एक अहम किरदार निभाया है। संविधान के चौथे भाग में, देश के नागरिकों कुछ मौलिक अधिकार दिये गए है। अनुच्छेद 15 (2) किसी भी नागरिक के साथ धर्म, वर्ण, जाति, लिंग और जन्मस्थान के आधार पर (अ) दुकानों, सार्वजनिक रेस्त्राओं, होटलों में जाने और सार्वजनिक मनोरंजन से या (ब) कुंओं, तालाब, स्नान घाट, सड़क और सार्वजनिक सैरगाहों का उपयोग करने में कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 15 (4) के अंतर्गत, राज्य को इसकी अनुमति दी गई है कि वह सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े किसी भी वर्ग के नागरिकों अथवा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए विशेष प्रावधान बनाए। (संदर्भः इग्नू 2010, ईएसओ-14, समाज और स्तरीकरण, खंड 6, पृष्ठ-8)

दलित शब्दावली भारत में दलित आंदोलनों के अति आवश्यक तर्क परिवर्तन और क्रांति को वैशिष्ट्य प्रदान करती है।

भाग 8.4 विभिन्न दलित आंदोलनों पर विस्तार से प्रकाश डालेगा। इस बीच, हम नीचे दलित आंदोलनों के मुदे और कारणों पर विचार करते हैं।

सोचिये और करिये 1

अपने पास-पड़ोस में रहने वाले गरीब लोग जैसे कि रिक्शावाला, धोबी, सफाई कर्मी या अन्य ऐसे ही निर्धन व्यक्ति पर गौर करें।

उनकी शैक्षणिक और जातीय पृष्ठभूमि के बारे में पता लगाएं। उनसे यह जानने कि कोशिश करें कि क्या वे दलित शब्द से परिचित हैं। इस बारे में एक पृष्ठ की टिप्पणी लिखें और अध्ययन केंद्र के दूसरे साथी छात्र से उसकी तुलना करें।

बोध प्रश्न 1

नोटः 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) दलित शब्द के उद्‌भव पर एक नोट लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

8.2.2 सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्ण और जाति

भारतीय न्यायपालिका ने समाज में दलित के प्रति होने वाली हिंसा पर काबू पाने के लिए 'जातिगत अत्याचार' को एक अपराध करार दिया। इसलिए उसने स्पष्ट रूप से माना कि दलितों की दासता और दमन के केंद्र में जाति है। जैसा कि आप सभी जानते हैं हमारा समाज एक स्तरीकृत समाज है, जो पदानुक्रम और भेदभाव पर आधारित है (गुप्ता, 1991) भारतीय संदर्भ में जाति पर आधारित स्तरीकरण अब भी महत्वपूर्ण बना हुआ है, जिसने निचली जातियों के शोषण को जन्म दिया है। श्रीनिवास (1998: 63) के मुताबिक वर्ग और जाति के बीच संबंध यह है कि जाति, वर्ण की इसी परम्परागत अवधारणा अंतर्गत सम्मिलित रहती है।' वर्ण योजना ने जाति प्रथा की छवि को विद्रूप कर दिया हैं। जहां ब्राहमण श्रेणी क्रम में सबसे ऊपर और अस्पृश्य सबसे निचले पायदान पर है। श्रीनिवास के अनुसार वरिष्ठता का ऐसा क्रम न केवल वास्तविकता है बल्कि वर्ण योजना के परवर्त्ती संस्करण ने तो ब्राहमणों की सर्वोच्चता को स्थापित कर दिया है।

वर्ण व्यवस्था समाज का चार भागों में एक श्रेणीबद्व विभाजन है। इसमें ब्राहमण, क्षत्रिय, ''वश्य और शूद्र आते है। शूद्र वर्ण के अंतर्गत सभी जातियों को रखा गया है। वहीं, अस्पृश्यों को 'अतिशूद्र' बताते हुए उन्हें वर्ण-व्यवस्था से ही बाहर कर दिया गया था। श्रेणीबद्व समाज का यह विभाजन इस स्थापित मिथक पर आधारित है कि ब्राहमण का उद्भव ब्रहमा (सृष्टिकर्ता) के मुख से, क्षत्रियों का हाथों से, वैश्य का जांघों से और शूद्र का पैरों से हुआ है। श्रीनिवास लिखते हैं कि अयोग्य, चांडाल, निषाद और पौलकस वर्ण-व्यवस्था से बाहर रखे गए थे। इस चार श्रेणियों की व्यवस्था में क्रम से पहले तीन वर्ण 'द्विज' कहलाते हैं, यानी उनका 'दो बार' जन्म होता है। इसका सरल मतलब यह कि उनका उपनयन संस्कार होता है, जिससे वे पवित्र धागा अर्थात् 'जनेऊ' धारण करते हैं। इसे ही उनका 'द्विज' होना या 'दूसरा जन्म' लेना माना जाता है। जबकि शूद्रों और अस्पृश्यों को जेनऊ धारण करने का कोई अधिकार नहीं था। जेनऊ धारण करने की यह विशिष्टता ही पहले के तीनों वर्णो को शूद्रों एवं अतिशूद्रों के ऊपर आनुष्ठानिक श्रेष्ठता स्थापित कर देती है। यह आनुष्ठानिक श्रेष्ठता ब्राहमणवादी हिन्दू धर्म (इस पर आगे विचार किया गया है) पर आधारित है। ऋग्वेद में वर्ण का अर्थ रंग है। प्रारंभ में इसका मतलब आर्य और दास होता था, जो बाद में आर्य और शूद्रों के रूप में बंट गया। प्रत्येक वर्ण में बड़ी संख्या में जातियों को सम्मिलित किया गया है। शूद्र वर्ण में बहुसंख्यक गैर-ब्राहमण जातियां समाहित है। चूंकि आनुष्ठानिक अवधारणाओं न ही चार वर्ण बनाये है, ऐसे में जाति को एक श्रेणीबद्व प्रणाली रूप में देखा जाता

है। एक अंतिम समूह के रूप में जाति शूद्र और अशूद्र की अवधारणा पर आधारित है, जो शूद्र और आतिशूद्र को निम्न हैसियत देती है और छुआछूत/अस्पृश्यता को एक सामाजिक व्यवहार मानती है। जातिगत अत्याचार इसी श्रेणीबद्वता के दुष्परिणाम है, जिनका प्रथाओं और धार्मिक कर्मकांडों में कुछेक अंतरों के साथ पालन किया जाता है। संवैधानिक प्रावधान सुनिश्चित किये जाने के बाद जाति ने राजनीतिक कार्यों को अधिग्रहित कर लिया है, लेकिन आनुष्ठानिक आयाम अब भी जातिगत विभेद और श्रेणीबद्वता के मौलिक स्रोत बना हुआ है। इसने ब्रिटिश भारत और पश्चिमी उदारवाद के उदय के साथ में नया अर्थ ग्रहण कर लिया था और यह आजाद भारत में भी पहचान और समुदाय को परिभाषित करने वाली संस्था के रूप में मजबूत होती चली गई। जातिगत अत्याचार से बचने के लिए दलितों ने धर्मपरिवर्तन और संस्कृतिकरण का सहारा लिया। यद्यपि श्रीनिवास (1998: 59) तर्क देते हैं कि छुआछूत की समस्या थोड़े भिन्न रूपों में दूसरी निम्न जातियों में बनी रही क्योंकि वे पश्चिमीकरण और संस्कृतिकरण के सोपनों के जारिये ऊपर उठने के अवसरों से कोई लाभ नहीं ले सकी। स्वतंत्र भारत में संवैधानिक प्रावधानों ने अस्पृश्यों के स्तर में गुणात्मक परिवर्तन लाया है, किंतु अब भी जारी जातिगत अत्याचारों ने दलितों की नई लाभबंदी को जन्म दिया है।

8.2.3 छुआछुत का सामाजिक चलन

'अस्पृश्यता' भारतीय समाज का वह आयाम है, जिसने हमारे देश की संवृद्वि और विकास को अवरूद्व किया है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह कि इसने मनुष्य जाति की गरिमा को संकट में डाला है और उन्हें बुनियादी मानवीय अधिकार से भी मनाही कर दी है। यह एक सामाजिक चलन है, जिसकी जड़े जाति और वर्ण पर आधारित हिन्दू समाज के सामाजिक मूल्यों में है। भारत में अस्पृश्यता लोगों की गरीबी, अशिक्षा, दासता और समाज में गंभीर अवमानना और शोषण के कारण है। यह चलन जन्म पर आधारित है और जिसने इसके जरिये कइयों को जाति पदानुक्रम के दायरे से बाहर कर दिया है या उन्हें सबसे निचले पायदान पर रखा है।

उन्हें खास पेशा अपनाने तक ही उनको सीमित कर दिया है और सबसे बड़ी बात कि उन्हें स्पर्श करने लायक नहीं बल्कि अपवित्र माना है। ये सब करते हुए उनका शोषण किया गया है। अपवित्र माने जाने वाले पेशे, जैसे चमड़े का काम, शौचालयों की सफाई, सीवेज टैंक, नालियों, शवों के निस्तारण आदि काम स्वभावतः प्रदूषित है। इन कामों को देश की आबादी के तयशुदा भाग ही करते हैं, जिन्हें अस्पृश्यों के रूप में जाना जाता है। इसलिए छुआछूत या अस्पृश्यता का व्यवहार समाज में दूसरे सदस्यों से मेलजोल में खलल डालता है। अपवित्रता की सामाजिक अभिव्यक्ति स्पर्श के जरिये होती है। वे काम अशुद्व-अपवित्र माने जाते हैं, जिससे ऊंची जाति समूहों के सदस्यों के अपवित्र कर देते हैं। निम्न जातियों का 'स्पर्श' उनका 'साया' और यहां तक कि उनकी आवाज तक अपवित्रता की स्रोत मानी जाती है और उनमें ऊंची जातियों को अपवित्र कर देने की क्षमता होती है। ऊंची जातियों को अपवित्र कर देने की गंभीर सजा भुगतनी पड़ती है और अधिकतर मामलों में जान तक ले ली जाती है। इसलिए तो वे अपने आसपास स्वच्छंद होकर घूम-फिर नहीं सकते, सामाजिक जीवन में शरीक नहीं हो सकते, मंदिरों में नहीं जा सकते, त्योहारों में, मेलों में भाग नहीं ले सकते, सामुदायिक स्थलों पर नहीं जा सकते, इत्यादि। ऐसे में आप भली-भांति अनुमान लगा सकते है कि यह आचार-व्यवहार 'चतुष्वर्ण' (वर्ण की चार स्तरीय व्यवस्था) पद्वति के समय से ही चला आ रहा है। हिन्दुत्व में अंतर्निहित विभेदकारी जाति-व्यवस्था के कारण यह अभी तक जारी है। बीआर अम्बेडकर ने 1948 में इसको परिभाषित करते हुए कहा था कि उपायों की अवधारणा है। यह स्थायी रूप से वंशानुगत कलंक का मामला है, जिसे कुछ भी नहीं साफ कर सकता।'

8.2.4 ब्राहमणवादी हिन्दुत्व

ऊपर निर्दिष्ट दो कारकों की जड़े मूल ब्राहमणवादी परम्पराओं में हैं, जो औपनिवेशिक काल से ही प्रभुत्ववादी हिन्दुत्व का बाना धरे हुए हैं। ब्राहमणों की रूढ़िवादिता और उनकी प्रभुता समय के साथ बढ़ी है। उसने अपनी यह वैधता इस रचे गए तर्क से हासिल की है कि हिन्दुत्व हिन्दुओं का प्राचीन धर्म है। क्या आप जानते हैं कि ब्राहमणवादी हिन्दुत्व वेदों (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अर्थर्ववेद और सामवेद और ब्राहमणों की मान्यता तथा 'मनुस्मृति' पर आधारित सामाजिक व्यवस्था के एकीकरण पर टिका हुआ है? भगवद्गीता जोर-शोर से कहती है कि हरेक व्यवस्था को धार्मिक ग्रंथों में लिखे के अनुसार अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करना है, तभी मरने के बाद जीवात्मा को मोक्ष मिल सकेगा। कर्म की यह सैद्वांतिकी रची गई और हिन्दुओं के कानून की पुस्तक 'मनुस्मृति' पे जातियों के बारे में कठोर नियम बनाएं। इसने समाज में अस्पृश्यता का समर्थन किया और पुरोहित जातियों (ब्राहमण) द्वारा इस व्यवस्था का कठोरता से पालन किया गया। ऐसी व्यवस्था में पुरोहित जातियां सिरमौर होती हैं और जो जाति एवं अस्पृश्यता की संस्था पर कड़ाई से आचरण करती हैं। जाति से जुड़ा 'अपवित्रता' का विचार ऊंची जातियों को एक सांस्कृतिक पहचान देता है। यह जातियों के वरीयता क्रम में उन्हें निचली जातियों से स्वयं को श्रेष्ठ दिखाने के लिए है। ब्राहमणवादी सिद्वांतों से उत्पन्न पवित्रता के अनुष्ठान में शूद्र, महिलाएं और अस्पृश्य सभी के सभी समाज के अंतर्गत अपवित्र माने जाते हैं।

जातियों की शुद्वता के लिए उन्हें सामाजिक व्यवस्था की परिधि पर ही रहना है और वे समाज की ऊंची जातियों के सदस्यों के साथ बराबरी नहीं कर सकते। पवित्रता का अनुष्ठान, ब्राहमणवादी प्रथाओं में शामिल हैं, वह समाज में ऊंची जातियों के प्रभुत्व को स्थापित करता है और निम्न जातियों के पुरुषों को सभी सामाजिक अधिकारों से वंचित करता है। मंदिरों में अस्पृश्यों का प्रवेश प्रतिबंधित था। निम्न जातियों का पुरी तरह निशक्तिकरण और दासत्व ने जीवन के हर क्षेत्र में ऊंची जातियों के वर्चस्व का विस्तार किया। जाति-श्रेणी में स्वयं के सर्वश्रेष्ठ होने की स्थिति ने उन्हें धार्मिक रीति-रिवाजों के नाम पर निम्न जातियों के शोषण का जैसे वैधानिक अधिकार दे दिया था। जातिगत श्रेणी में उनकी सर्वोच्च हैसियत ने रीति-रिवाजों के नाम पर उनका शोषण करने की धार्मिक वैधता प्रदान कर दी। अस्पृश्यता पर आधारित और सामाजिक-आर्थिक गैरबराबरी, ब्राहमणवादी जातियों की सांस्कृतिक सर्वोच्चता और धार्मिक विश्वासों में भेदभाव को बढ़ावा देने वाली परम्परागत हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के विरूद्व इसलिये दलित आंदोलन उठ खड़ा हुआ।

8.2.5 वैकल्पिक धार्मिक आंदोलन

आपको यह बताना महत्त्वपूर्ण है, और जैसा कि श्रीनिवास (1998; 64) लिखते हैं, पूरे भारतीय इतिहास में ब्राहमणवादी सर्वोच्चता को नकार देने के कई प्रयास होते रहे है।' 10वीं और 13वीं शताब्दियों के दौरान हुए भक्ति के लिए भक्ति ही एकमात्र रास्ता है, जातिगत श्रेष्ठता और ब्राहमणवादी प्रभुत्व के विरूद्व विद्रोह कर दिया था। भक्ति पंथ के संत वेदांत-दर्शनों के विरूद्व खड़े हो गए थे। इन संतों में मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु, कबीर, तुकाराम और वल्लभाचार्य इत्यादि प्रमुख थे। उनके साथ ही, रविदास, चोखमेला, कनक, नंदनारा और अन्य जैसे अस्पृश्य संत भी थे। इन संतों को भी मंदिरों में प्रवेश करने पर रोक लगा दी गई थी और इसलिए वे अपनी पूरी आध्यात्मिक यात्रा में ब्राहमणवादी अनुष्ठानों पर सवाल उठाते रहे। सिखवाद, बौद्ववाद, वीरशैववाद जैसी धार्मिक परम्पराओं ने भी हिन्दू समाज में जातियों के उस श्रेणीक्रम के विरूद्व संघर्ष किया था, जिसमें ब्राहमणों या द्विजों को निम्न जातियों के उस श्रेणीक्रम के विरूद्व संघर्ष किया था, जिसमें ब्राहमणों या द्विजों को निम्न जातियों की तुलना में सर्वोच्च शक्ति हासिल थी। भक्ति या संत आंदोलन हिन्दुत्व के प्रभुत्व के विरूद्व

संघर्ष के लिए नई पीढ़ियों को एक आधार देता है और उनका मार्ग प्रशस्त करता है। ऐसा करते हुए उन अस्पृश्य संतों ने निम्न जातियों की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं, उनके अधिकारों और हिन्दुत्व के सम्पूर्ण बहिष्कार की नींव रखी।

8.3 सामाजिक सुधार आंदोलन

आप सभी को औपनिवेशिक काल में हुए समाज सुधार आंदोलनों से अवश्य ही परिचित होना चाहिए। ये आंदोलन समाज सुधार के लिए रूढ़िवादी पारम्परिक सामाजिक-धार्मिक प्रथाओं के विरूद्व एक जागृति और संघर्ष के रूप में चलाये गए थे। शिक्षित स्त्री और पुरुषों ने, स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, बाल विवाह के विरोध और सती प्रथा के उन्मूलन, स्त्रियों के हक और उनकी आजादी के लिए काम किया था। पंडिता रामाबाई, ताराबाई शिंदे, राममोहन राय और उनके जैसे कई लोगों ने समाज के बहुमुखी सुधार में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। इन्होने धार्मिक परम्पराओं में सुधार का भी मार्ग प्रषस्त किया। आधुनिक चिंतकों ने तो हिन्दू धर्म की हठधर्मिता (मतान्धता) को चुनौती दी। महात्मा गांधी, रबीन्द्र नाथ टैगोर, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द और श्री अरबिन्द के जैसे आधुनिक भारतीय सामाजिक चिंतकों ने हिन्दू धर्म की रूढ़िवादी प्रथाओं को एकदम नकार दिया और समाज को एक नये धर्म का विमर्श दिया। उनका विश्वास था कि जाति और अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का मूल स्वरूप नहीं है।

8.3.1 छापे (Printing) और सार्वजनिक क्षेत्र का अभ्युदय

छापे की नई तकनीक ने दलित नेताओं और कार्यकर्ताओं के हाथों में एक नया औजार थमा दिया। इसके बाद तो कार्यकर्ताओं के लिए शिक्षा एक केंद्रीय सरोकार हो गई। पहले औपनिवेशिक काल और फिर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मराठी दलितों के सार्वजनिक क्षेत्र का खूब उन्थान हुआ। अभियानों के लिए पर्चों, (Pamphlets), किताबों और अन्य सामग्री का उपयोग किया जाने लगा। ज्योतिबा फुले और बी.आर. अम्बेडकर ने व्यापक स्तर पर लेखन किया। इनमें फुले ने 1885 में एक किताब 'गुलामगीरी' लिखी। यह उनका बुनियादी लेखन है, जिसमें उन्होंने आर्य, जाति और हिन्दुत्व के वर्चस्व को विश्लेषित किया है। शूद्र कौन थे? अम्बेडकर की लिखी किताब उनके जीवनकाल छापी थी। बाद में उनकी प्राचीन भारत में क्रांति और प्रतिक्रांति सहित अन्य पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। अम्बेडकर के पहले जी.बी. वालंगकर ने देशबंधु और सुधारक के जरिये मानवाधिकार के प्रश्न पर दलितों को लाभबंद किया था। ताराबाई शिंडे ने सत्य शोधक समाज में स्त्री-पुरुष तुलना लिखी, जो मराठी में स्त्रीवादी आंदोलन के महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों में एक है। पंडिता रामाबाई ने ऊंची जाति की महिलाओं के बारे में अंग्रेजी में लिखा। दूसरी तरह, बाणसोडे एक शिक्षाविद् और पत्रकार थे, जो गैर ब्राहमण आंदोलन से जुडे थे। ओम प्रकाश बाल्मीकि और उनके जैसे कई लेखकों के योगदान से मराठी दलित साहित्य का विस्तार हुआ। इन्होंने मजबूत सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्पराओं की बुनियाद रखीं, जिन्होंने दलित आंदोलन को विविध तरीके से एक आकार दिया।

बोध प्रश्न 2

नोटः 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

क) जाति

.....

.....

.....

.....

ख) अस्पृश्यता

.....

.....

.....

.....

.....

ग) समाज-सुधार आंदोलन

.....

.....

.....

.....

.....

8.4 दलित नेता और दलित आंदोलन के विभिन्न चरण

भारत में दलित आंदोलन विभिन्न चरणों में और भिन्न-भिन्न नेताओं और समूहों के नेतृत्व में चलाये गए हैं। ओमवेट (1996; 6) बताती हैं कि ज्योतिबा फुले से प्रारम्भ हुआ दलित आंदोलन बी.आर. अम्बेडकर के नेतृत्व में समेकित संघर्ष के रूप में पूर्ण हुआ है। इसके पश्चात, इस आंदोलन में दलित पांथर्स, रिपब्लिकन पार्टी के धड़ों, बहुजन समाज पार्टी (बसपा) और कुछ छोटी जातियों के नक्सली समूहों के जरिये एक कट्टरपंथी मोड़ आता है। दलित आंदोलन के नेताओं, उनकी अवधि और उनसे जुडे समूहों संक्षिप्त वर्णन भारत में दलित आंदोलन के विकास के बारे में आपको एक नजरिया देगा।

8.4.1 ज्योतिबा फुले और दलित सुधार आंदोलन

महात्मा ज्योतिबा फुले (1827-1890) अति पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) की माली जाति से आते थे। सुधार आंदोलन की लहरों से प्रभावित हो कर उन्होंने समाज की ऊंची जातियों के दमन के खिलाफ मजबूत प्रतिरोध किया। फुले ने गरीबों, अनपढ़ों, अस्पृश्यों और महिलाओं के बीच काम किया। उन्होंने 1875 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। पुणे में, जहां से वे ताल्लुक रखते थे, अस्पृश्य लड़कों और लड़कियों के लिए स्कूल खोलना प्रारम्भ किया। एक समाज सुधार के रूप में उनका मानना था कि अगर गरीब अस्पृश्यों तक शिक्षा का आलोक फैला दिया गया तो यह पुरोहित जातियों के विरूद्व संघर्ष को एक तार्किकता प्रदान करेगा। महात्मा फुले ने देखा कि शिक्षा सामाजिक बदलाव को एक बड़ा संसाधन है और यह विचार दिया कि ज्ञान, शिक्षा और विज्ञान गरीबों के हाथों में उनकी तरक्की के हथियार हैं। उन्होंने माना कि निम्न जातियों की तुलना में अस्पृश्य सबसे ज्यादा शोषित है। उनसे एक हो जाने का आहवान करते हुए फुले ने माना कि वे सब मिलकर भारत का सबसे बड़ा शोषित समाज

हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि शूद्र और अति-शूद्रों अपनी स्थिति के बारे में सोच-विचार करें। यह पहचाने कि यह जाति ही उनकी दासता की सबसे बड़ी वजह है।

फुले ने आर्य की विजय (ओमवेटः 1996) के बारे में लिखा था। उन्होंने आर्य को एक निर्दयी और हिंसक घुसपैठियों के रूप में चित्रित किया, जिन्होंने धोखे और हिंसा के जरिये के समतावादी और समृद्व समाज को औंधे मुंह कर दिया। आर्य ने एक विखंडित और समताविहिन समाज के लिए जाली पुराण रचे, जिनके पाठ तक दलितों की पहुंच नहीं थी। इन आलोचनाओं के माध्यम से महात्मा फुले ने ब्राहमणवादी रूढ़िवादिता और ऊंची जातियों के वर्चस्व का विरोध किया। यह करते हुए उन्होंने गैर-ब्राहमण जातियों को मिलाकर एक बेहद मजबूत जाति-विरोधी आंदोलन का नेतृत्व किया। उन्होंने अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले के साथ मिलकर हिन्दू विधवाओं के लिए चली आ रही निर्दयी ब्राहमणी प्रथाओं के विरोध के साथ सम्पूर्ण ब्राहमणी प्रथाओं के विरूद्व अपनी आवाज बुलंद की। ब्राहमणों के बीच विधवाओं की हालत बेहद दयनीय थी। लिहाजा, फुले ने विधवाओं और बच्चों के लिए घर खोल दिया। उन्होंने ब्राहमणों के अत्याचार चुनौती देते हुए समाज को एक मानवीय स्वरूप देने का प्रयास किया।

1920 के दशक से लेकर 1930 के दशकों के अंतराल में भिन्न-भिन्न नेताओं नेतृत्व में विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर किसानों, दलितों और महिलाओं के कई आंदोलन शुरू हुए। शूद्र और अति-शूद्र के फुले के फार्मुले के आधार पर समाज की निचली जातियों द्वारा जाति-विरोधी, ब्राहमण विरोधी, ब्राहमण विरोधी और हिन्दू विरोधी विचारधाराओं को आंदोलन होने लगे। महाराष्ट्र में गैर-ब्राहमण और तमिलनाडु में ओमवेट (1998; 35) के साथ, पंजाब, कर्नाटक और उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में हुए सभी दलित आंदोलनों ने फुले की स्थापनाओं के आधार पर आर्यों के आक्रमण और धार्मिक आधार पर ब्राहमणों के शोषण को रेखांकित किया है। गैर-आर्य की वंशावली आदि परम्पराएं देश के कई स्थानों पर शुरू हो चुकी थी। किसान फागुजी बानसोडे (1870.1946) महाराष्ट्र में आदि आंदोलन के सबसे बड़े उन्नायकों में थे। अतः 1920 के दशक तक नया दलित आंदोलन गैर-ब्राहमणों के संघर्ष से बाहर आते हुए यह दावा किया कि गैर-आर्य ही भारत के मूल निवासी हैं और ब्राहमणी परम्पराओं की सर्वोच्चता को मानने से इनकार कर दिया। दलित आंदोलन पंजाब में अद्-धर्म था, उत्तर प्रदेश में आदि हिन्दू, हैदराबाद में आदि आंध्रा, तमिलनाडु में आदि द्रविड़ और कर्नाटक में आदि कन्नड़। इस तरह, फुले ने अपने समय पर शीर्ष पर रहीं हिन्दूवादी लहरों को रोकने के लिए एक सार्वभौमिक स्थापना विकसित की।

ज्योतिबा फुले

फुले द्वारा स्थापित किये गये शोधक समाज के कार्यक्रमों में गैर-ब्राहमणवादी आंदोलन को सांस्थानिक मान्यता दी गई। उन्होंने ब्राहमणों को धूर्त्त और लोभी मानते हुए जातिगत पदानुक्रम में अपना ऊंचा स्थान जारी रखना सुनिश्चित रखने के लिए उनके असहनीय आरोपण के रूप में इसकी निंदा की।

दलित आंदोलन की मूल स्थापक और समर्थक प्रभावी खेतिहर जातियां कालांतर में कांग्रेस समर्थक हो गई थीं। निचली जातियों के शोषण को लेकर फुले की स्थापनाओं को पार्टी के आर्थिक और राजनीतिक प्रस्तावों में उपेक्षा कर दी गई। फुले ने सांस्कृतिक और जातीय स्तर होने वाले शोषण की व्याख्या की थी। उन्होंने समाज को पूर्व-ब्राहमण धार्मिक परम्पराओं की ओर लौटने को आवश्यक बताया था। उनके मुताबिक इन लक्ष्यों को साधने के लिए संगठन और शिक्षा आवश्यक माने जाते हैं। फुले ने भारतीय किसानों और दैनिक मजदूरों के शोषण का विरोध किया था। (संदर्भ इग्नू 2010; ई.एस.ओ-14 समाज और श्रेणीकरण, खंड 6, पृष्ठ. 14).

8.4.2 डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और उनका आंदोलन

भीमराव रामजी अम्बेडकर (1891-1956) गैर-ब्राहमण की स्थापना में एक दलित नेता के रूप में उभर कर सामने आए। उनके नेतृत्व में दलित आंदोलन के दूसरे चरण का प्रारम्भ माना जाता है क्योंकि वह दलितों के राजनीतिक आधिकारों की हिफाजत पर जोर देते थे। अम्बेडकर ने अस्पृश्यों के लिए सिर्फ हिन्दू समाज में जगह ही नहीं, बल्कि उनके लिए अलग निर्वाचक मंडल की मांग की (सिंह; 1995: 115). उन्होंने 1932 में गांधी के साथ किये पूना समझौते में दलितों के लिए सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों की मांग की। सिंह ने अम्बेडकर के नेतृत्व में 1930 से लेकर 1956 के दौरान दलित राजनीतिक में दो महत्तवपूर्ण बदलावों को रेखांकित करते हैं। वह समान राजनीतिक अधिकार और जाति-व्यवस्था के समूल उन्मूलन के लिए उत्सुक थे। अम्बेडकर द्वारा 1936 में स्थापित इंडियन लेबर पार्टी को एक स्वतंत्र दलित आंदोलन का प्रारम्भ माना जा सकता है।

अम्बेडकर अमेरिका से कानून की पढ़ाई कर भारत लौटे थे। उन्होंने बड़ौदा की राजकीय सेवा से त्यागपत्र दे दिया और बॉम्बे (अब मुम्बई) सेडन्हाम कॉलेज में प्रोफेसर हो गए। यहीं वह कोल्हापुर के शाहू महाराज से जुड़े और दलितों की पूर्ण स्वायत्तता के लिए अपना संघर्ष शुरू किया। अम्बेडकर ने महारों की बहिष्कृत हितकारिणी सभा की नींव रखने के साथ राजनीति में प्रवेश किया। जल्द ही उन्होंने इसके लिए राज्य में और इसके आसपास सभाएं शुरू कर दी। पहला दलित मुक्ति आंदोलन-महद् सत्याग्रह-इन्हीं सभाओं का सकारात्मक परिणाम था। शहर के टैंक से दलितों को पीने का पानी लेने का निर्णय तो विफल हो गया लेकिन दलितों ने 'मनुस्मृति' की प्रतियां जला कर ब्राहमणों के दमन के विरूद्व अपना स्पष्ट संदेश दे दिया। कांग्रेस के बुर्जुआ के प्रति जातीय विरोध और किसानों, मजदूरों और समाज के हाशिये पर पड़े अन्य वर्गों के बढ़ते असंतोष के बीच देश में विकसित हो रहे वातावरण में अम्बेडकर एक सर्वाधिक ताकतवर नेता के रूप में उभरे। अम्बेडकर ने समाज की ऊंची जातियों के विरूद्व कामगारों, किसानों, दलितों, गैर-ब्राहमणों और गैर-कांग्रेसी राजनीतिक सहयोगियों के साथ एक मजबूत एकता की प्रस्तावना के साथ अपने संघर्ष को धार दिया। अम्बेडकर के लिए केवल ब्राहमण ही नहीं बल्कि पूंजीपति और भूस्वामी भी लोगों के शत्रु थे। उनका विश्वास था कि समाज में दलितों की सामाजिक हैसियत में सुधार के लिए दलितों की आर्थिक आजादी उतनी ही आवश्यक है।

अम्बेडकर ने खूब लिखा और एक समाजवादी ढ़ांचे को अंगीकार किया। वह राज्य निर्देशित औद्योगिक विकास में विश्वास करते थे। वह गैर-आर्य के दावे के खिलाफ थे और विश्वास करते थे कि जाति-व्यवस्था काफी बाद की देन है। अम्बेडकर ने हिन्दुत्व को जातिगत अवधारणा पर आधारित और इसलिए उसे असमानता और असमतावाद का प्रतिनिधि मानते हुए लोगों से बड़ी संख्या में बौद्व धर्म ग्रहण करने का आहवान किया। उनके आहवान पर नागपुर में लगभग 10 लाख लोगों ने बौद्व धर्म स्वीकार किया था। उन्होंने 'मनुस्मृति' को खारिज कर दिया और बौद्व धर्म को गरीबों और महिलाओं के शोषण के बजाय परम्पर समानता और औचित्य पर आधारित धर्म मानते हुए उसे अंगीकार किया। हिन्दू धर्म का परित्याग दलित की पहचान और मुक्ति की एकमात्र स्रोत था। अम्बेड़कर ने रिपब्लिकन पार्टी के नाम से संयुक्त मोर्चा बनाया, जिसने संयुक्त महाराष्ट्र समिति के साथ मिलकर काम किया। उन्होंने सामाजिक व्यवस्था में बदलाव के लिए विचारधारात्मक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संघर्ष का आहवान किया।

8.4.3 पेरियर और जन आंदोलन

तमिलनाडु में गैर-ब्राहमणवादी आंदोलन ने ई.वी. रामास्वामी पेरियार (1879-1973) को पैदा किया, जो ईरोड में मर्चेंट परिवार से आते थे। ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई फुले की तरह

वहां अन्य भी कई नेता थे। जैसे तमिलनाडु में नाइकर और केरल में श्री नारायण धर्म परिपालना आंदोलन या एसएनडीपी जैसे दलित आंदोलन थे। पेरियार ने 1925 में कांग्रेस छोड़ दी थी। जब महात्मा गांधी ने वर्णाश्रम धर्म का समर्थन किया तो पेरियार ने इसका विरोध किया और घोषणा की कि अगर भारत को आजाद होना है तो कांग्रेस, हिन्दू धर्म और ब्राहमवादी वर्चस्व का विघटन करना ही होगा (ओमवेः 55)। फुले के सत्य शोधक समाज की तर्ज पर पेरियर ने 1926 में आत्म सम्मान संघ (सेल्फ रिस्पेक्ट लीग) की स्थापना की, जो स्पष्टतः कट्टर राष्ट्रवाद को स्वीकार करता था और जाति व धर्म के विरूद्व मजबूती के साथ खड़ा था। पेरियार का मूल सिद्वांत-जाति-विरोधी और धर्म-विरोधी उनके मूल विचार जो भाषणों में अभिव्यक्त हुए हैं, वह गैर-ब्राहमण आंदोलनों को एक नया विन्यास देते है।

8.4.4 दलित पैंथर्स आंदोलन, बहियान समाज (बीएसपी) आंदोलन और कुछ अन्य

अम्बेडकर के बाद विभिन्न पार्टियों के बैनर (banner) तले कई आंदोलन चलाये गए। दलित पैंथर के आने से दलित आंदोलन में एक क्रांतिकारी मोड़ आया। इस संगठन में उन सभी पार्टियों की साझेदारी में संघर्ष तेज किया जो देश से जाति और वर्गीय राजनीति के उन्मूलन के प्रति प्रतिबद्व थे। यह दलित युवाओं का आतंकवादी संगठन था, जो 1972 में बॉम्बे में बना था। उसका दावा था कि आजाद भारत की राज्य मशीनरी में सामंतवादी विचारधारा और हितों से संचालित लोगों का दखल था। ऐसी विचारधारा धर्म पर आधारित थी, जिसने एक व्यक्ति के रूप में दलितों के नागरिक अधिकार, ताकत, सम्पत्ति और समाज में उनकी उचित हैसियत, सबसे वंचित कर दिया था। भ्रष्टाचार, गरीबी, राज्य का वर्चस्व, कमजोर वर्ग को हाशिये पर धकेले जाने के खिलाफ देश भर में उठने वाली कई आवाजों को एक साथ मिला कर दलित पैंथर्स ने दलित आंदोलन के क्षितिज का विस्तार पर उसको एक नई दिशा दी। इसने विरोध की चिंगारी पैदा की और ब्राहमणों के खिलाफ संगठित विरोध का प्रयास किया। इसके परिणामस्वरूप दलित संघर्ष समिति बनी और इसकी शाखाएं पूरे देश में फैल गई। धीरे-धीरे अम्बेडकरवादी संगठन तमिलनाडु में बनने लगे और 1984 तक दलित महासभा का गठन हो गया था। इसी साल कांशीराम ने अम्बेडकर के जन्मदिन के अवसर पर अपनी एक पार्टी बनाई, जिसे बहुजन समाज पार्टी (बी. एस.पी) के नाम से जाना जाता है। इसका लक्ष्य दलितों, आदिवासियों, अति पिछड़ा वर्ग (ओ.बी.सी) और अल्पसंख्यकों के बीच काम करना था। भारतीय रिपब्लिक पार्टी ने अपने को व्यापक तौर पर महार और दलित के प्रति प्रतिबद्व रखा।

बोध प्रश्न 2

नोटः 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

क) किस नेता ने सत्यशोधक समाज का प्रारम्भ किया था?

.....

.....

.....

.....

.....

ख) दलित पैंथर्स कौन थे?

.....

.....

.....

.....

.....

स) ज्योतिबा फुले कौन थे?

.....

.....

.....

.....

.....

8.5 दलित आंदोलन का संक्षिप्त अवलोकन

मंडल आयोग ने दलित बहुजन परिसंघ को एक भिन्न आयाम दिया। इसके बाद राजनीतिक पार्टियों ने दलितों को संसदीय प्रणाली की मुख्यधारा की राजनीति में ले आई। गोपाल गुरू लिखते हैं, वर्तमान में दलित राजनीति ने आंदोलन को एक दबावकारी समूह तक सिमटा दिया है, जो छोटे स्तर पर सीमित रह गया गया है। राष्ट्रीय हैसियत पाने में दलित सफल हुए हैं और साक्षरता के क्षेत्र में भी बेहतर उपलब्धियां हासिल की हैं। 2011 की जनगणना के मुताबिक दलितों की साक्षरता दर 66.10 फीसद रही है। सरकार ने विभिन्न स्थानीय निकायों में दलितों के प्रति सामाजिक भेदभाव पर रोक लगा दी है। फिर भी दलितों की राजनीतिक लाभबंदी में हिंसा का प्रयोग चुनौती बना हुआ है। 2016 में गुजरात के उना का मामला हो या इसी वर्ष के जनवरी में दलित रोहित वेमूला के साथ निजी स्तर पर हुए भेदभाव, जिसके चलते उसको आत्महत्या जैसी घटनाएं सांस्कृतिक और सामाजिक समानताओं के लिए दलित संघर्ष की जबर्दस्त चुनौती बनी हुई है। हिन्दुओं के वर्चस्व वाले समाज में ऊंची जातियों का प्रभुत्व निचली जातियों और अस्पृश्यों के समावेश के अब भी विरोध में हैं।

8.6 सारांश

यह इकाई भारत में दलित आंदोलन पर ध्यान कंद्रित करता है। यह दलित शब्द का अर्थ, कारणों और मुददों प्रस्तुत करता है, जिन्होंने दलित आंदोलन और खास कर इसके नेताओं को एक आकार और धार दिया है।

दलित आंदोलन के विभिन्न चरणों को उसके महत्त्वपूर्ण नेताओं और मसलों के साथ जोड़ा जा सकता है, जिन्होंने दलितों की मुक्ति और उद्धार के लिए आवाज उठाई। यह आंदोलन समाज की निचली जातियों और अस्पृश्यों के शोषण और उत्पीड़न के विरूद्व संघर्ष की अभिव्यक्ति है। दलित आंदोलन का विकास हमें यह भी बताता है कि दलित शब्द का मतलब सभी गरीब, समाज के सीमांत पर पड़े और पददलित वर्ग है। यह भी कि दलित आंदोलन का प्रयास ऐसे कामगारों, किसानो, भूमिहीन मजदूरों, महिलाओं और धार्मिक अल्पसंख्यकों

के लिए था। इस आंदोलन में प्राचीन धार्मिक शोषण से मुक्त एक समतावादी, न्यायी और जीवंत समाज वाले वैकल्पिक भारत रचने की ताकत हासिल थी।

8.7 संदर्भ

ओमवेट, गेल. 1996, दलित विजन्स : द एंटी कॉस्ट मूवमेंट एंड द कंस्ट्रक्शन ऑफ एन इंडियन आइडेंटी, ओरियंट लॉगमैन लिमिटेड, हैदराबाद।

शाह, घनश्याम (एडिसन), 2001, दलित आइडेंटिटी एंड पॉलिटिक्स : कल्चरल सबऑर्डिनेशन एंड दलित चैलेंज, वोल्यूम 2, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, लंदन

शाह, घनश्याम (एडिसन), 2002, सोशल मूवमेंट्स एंड दि स्टेटः रिडिंग इन इंडियन गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स-4, सेज पब्लिकेशन्स, लंदन, नई दिल्ली एंड थाउजन्ड ओक।

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

'दलित' शब्द का उपयोग प्रशासनिक रूप से अनुसूचित जातियों या एससी के अंतर्गत आने वाली निचली जातियों के लिए किया जाता है। हालांकि आधिकारिक रूप से इसके अंतर्गत अनुसूचित जनजातियों (एस.टी) और अतिरिक्त पिछड़ा वर्ग (ओ.बी.सी) को भी शामिल कर लिया जाता है। ब्रिटिश सरकार 1935 में अस्पृश्यों के लिए अनुसूचित जातियां (एस.सी) शब्द का उपयोग करती थी और इसके पहले 1919 में उन्हें डिप्रेस्ड जातियां कहती थी। हाशिये पर पड़े समाज के सभी वर्गों गरीब किसान, महिलाएं, कामगारों इत्यादि-लोगों के लिए डिप्रेस्ड कॉस्ट और 'दलित' शब्द का उपयोग लगातार किया जा रहा है। मराठी लेखकों ने सबसे पहले 1960 के दशक में 'अछूत' शब्द के बदले वैसे लोगों के लिए 'दलित' संज्ञा का प्रस्ताव किया था।

बोध प्रश्न 2

क) समाज को पदानुक्रमित समूहों में बंटती हुई जाति एक अंतर्विवाही समूह है।

ख) भारत के संविधान द्वारा अस्पृश्यता का उन्मूलन कर दिया गया है। अस्पृश्यता एक सामाजिक प्रथा थी, जो ऊंची जातियों द्वारा निचली जातियों के साथ भेदभाव या उनका शोषण किया जाना सुनिश्चित करती थी।

ग) सुधार आंदोलन वे आंदोलन है, जिनका लक्ष्य बुरी धार्मिक प्रथाओं, विश्वासों और अनुष्ठानों से समाज का सुधार करना था।

बोध प्रश्न 3

क) बी.आ.अम्बेडकर

ख) महाराष्ट्र के युवा दलितों का एक समूह

ग) एक समाज सुधारक और दलित नेता

इकाई 9 लिंग आधारित आंदोलन*

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 समाजशास्त्रीय अवधारणाओं की समीक्षा

9.2.1 लिंग और जेंडर

9.2.2 भूमिका एवं स्थिति

9.2.3 पारम्परिक अपेक्षायें तथा स्त्रियों की भूमिका व स्थिति

9.3 भारत में महिला आंदोलन : संदर्भ

9.3.1 पूर्व कालिक महिला आंदोलन

9.3.2 दहेज विरोधी आंदोलन

9.3.3 बलात्कार के विरुद्ध प्रदर्शन

9.4 आंदोलनः प्रगति एवं परिपक्वता

9.5 समलैंगिक तथा क्वीयर जनों का आंदोलन

9.6 आंदोलनों की चुनौतियां

9.7 सारांश

9.8 संदर्भ

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे :

- लिंग एवं जेंडर के बारे में प्रमुख समाजशास्त्रीय अवधारणाओं;
- जेंडर भूमिकाओं का सामाजिक निर्माण-समाज में योगदान;
- जेंडर संरचनायें समाज में अनेक भूमिकायें तथा स्तर, विशेष कर महिलाओं के स्तर को कैसे कैसे जन्म देती हैं;
- भारत में महिला आंदोलनों का वर्णन;
- महिला आंदोलनों में वृद्धि तथा उनकी परिपक्वता;
- श्रमिक शक्ति की प्रकृति तथा प्रकार;
- भारत में एल.जी.बी.टी आंदोलन; और
- महिला आंदोलन की चुनौतियां।

9.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने भारत में दलित आंदोलन के बारे में पढ़ा। इस इकाई में जेंडर आधारित आंदोलनों को बढ़ावा देने में पुरुषों और महिलाओं की भूमिकाओं पर विचार

*डॉ. टी. गांगमी, दिल्ली और कुछ अंश डॉ. अर्चना सिंह, अनु. एम.पी. कंवल

किया जायेगा, तथा भारत में महिला आंदोलनों से जुड़ी समस्याओं पर विचार किया जायेगा। सबसे पहले संक्षेप में उन प्रमुख समाजशास्त्रीय अवधारणाओं पर विचार करेंगे जो जेंडर समस्याओं से सीधी जुड़ी हैं। इसके बाद हम विभिन्न महिला संगठनों द्वार प्रस्तुत किये गये उन कारणों पर विचार करेंगे जो विभिन्न सामाजिक आंदोलनों को बढ़ावा देते हैं। इसमें पूर्वकालिक महिला आंदोलनों से लेकर परिवपक्व आंदोलनों तक को शामिल किया जायेगा। भारत में जेंडर आधारित आंदोलनों के बारे में जानकारी देने के उद्देश्य से एल.जी.बी.टी. तथा क्यूअर (Quer) आंदोलन के बारे में भी बताया जायेगा। अंत में भारत में महिला आंदोलन की चुनौतियों पर प्रकाश डाला जायेगा।

9.2 सामाजिक अवधारणाओं की समीक्षा

इस इकाई में हम यौन संबंधों तथा जेंडर संबंधी अवधारणाओं, भूमिकाओं तथा स्तर की तथा महिलाओं की भूमिकाओं व स्तर के बारे में पारंपरिक सोच की समीक्षा करेंगे। विभिन्न लैंगिक समस्याएं, स्त्रियों के स्तर को नीचा समझा जाने तथा समाज में मौजूद स्त्रियों के प्रति मनोवैज्ञानिक भेदभाव वाले दृष्टिकोण के कारण उत्पन्न होती है।

9.2.1 लिंग एवं जेंडर

मनुष्य की शारीरिक रचना की दृष्टि से दो प्रकार के विपरीत जेंडरों की पहचान की जाती है, एक स्त्री जेंडर तथा दूसरा पुरुष। परन्तु व्यवहारों में ऐसा देखा गया है कि परम्परागत रूप से समाज में लैंगिक आधार पर अलग-अलग तरह का व्यवहार किया जाता है। यह ठीक है कि शारीरिक रूप से दोनों लिंगों के व्यक्ति अलग-अलग होते हैं और शारीरिक स्तर पर उनकी गतिविधियां अलग तथा विशेष होती हैं। परन्तु सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाय तो दोनों ही मनुष्य हैं और लिंग के आधार पर उनके साथ भेदभाव किया जाना नैतिक व सामाजिक रूप से गलत है, परन्तु यह गलती हमारा समाज लम्बे समय से दोहराता चला आ रहा है। सामाजिक संरचना की दृष्टि से तथा सामाजिक संबंधों की दृष्टि से विचार किया जाये तो स्त्री और पुरुष दोनों का समान महत्व हैं, एक की अनुपस्थिति समाज की सरंचना और सामाजिक संबंधों के ताने-बाने को तहस-नहस करके रख देगी।

9.2.2 भूमिका व स्थिति

समाज में स्त्री और पुरुष दोनों की भूमिकायें और स्थितियां दोनों ही भिन्न-भिन्न होती हैं और उनके द्वारा संपन्न किये जाने वाले कार्य भी। ये सभी चीज़ें मिलकर समाज को एक स्वरूप प्रदान करती हैं। समाज में लोग व्यक्तिगत रूप से तथा समूहों में किस प्रकार एक दूसरे के साथ संबंधों को निभाते हैं, यह उनकी भूमिकाओं पर निर्भर करता है। भूमिका अथवा दायित्व का अर्थ है कि किसी खास परिस्थिति में किसी व्यक्ति से समाज क्या अपेक्षा रखता है, तथा स्थिति का अर्थ यह है कि स्त्री या पुरुष उस परिस्थिति से क्या अपेक्षा रखते हैं और स्पष्ट शब्दों में कहें तो भूमिका का अर्थ है दायित्व एवं कृतज्ञता, जबकि स्थिति का संबंध अधिकारों से है। भूमिका तथा स्थिति के बीच संबंधों की जटिलता अनेक बार इतनी बढ़ जाती है कि उसे समझना व सम्हालना मुश्किल हो जाता है, उदाहरण के लिये - मां को लीजिये। वह एक स्त्री है वह किसी की पत्नी भी है, वह घर के तमाम लोगों के लिये खाना पकाने का काम भी करती है और अपने बच्चों के लिये वह शिक्षक भी है और किसी दूसरी जगह वह बहू भी है। इस प्रकार एक स्त्री विभिन्न स्थितियों में तथा विभिन्न भूमिका में खड़ी दिखती है।

यदि एक मां गांव के स्कूल की प्रधानाचार्य भी हो, तो उसे दोनों दायित्व के निर्वहन में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है, क्योंकि एक मां की भूमिका और प्रधानाचार्य की भूमिकायें कहीं न कहीं आपस में जरूर टकरायेंगी और तब उस स्थिति में जो तनाव उत्पन्न होगा उससे उसे निबटना भी पड़ेगा। स्त्री के प्रति जो पारम्परिक नजरिया रहा है, उसके कारण स्त्रियों को बच्चों के पालन-पोषण की भूमिकाओं से निकलकर अन्य भूमिकाओं में खड़े होने पर अनेक विसंगतियों का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते है कि स्त्री ओर पुरुष के बीच शारीरिक संरचना का अंतर तो है ही, समाज में विभिन्न भूमिकाओं के निर्वहन में भी अनेक प्रकार की जटिलतायें भी मौजूद रहती हैं।

9.2.3 पारम्परिक अपेक्षायें तथा स्त्रियों की भूमिका व स्थिति

आपने समाज में जाति और धर्म के आधार पर लोगों को टकराते हुए देखा होगा और आपको यह सोचकर बड़ी हैरानी होगी कि लोग इस तरह क्यों टकराते हैं। इनमें से ज्यादातर टकरावों का कारण पारम्परिक रूप से समाज की उन लोगों से अपेक्षायें हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक जाति अथवा समुदाय के लोग दूसरी जाति अथवा समुदाय के लोगों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं। इन मामलों पर लोग चर्चायें भी करते हैं। स्कूलों में, घरों में, दोस्तों के बीच, चाय की दुकानों पर, ऐसे मामलों पर अक्सर चर्चा होती है।

कभी-कभी ऐसे मामले भी सामने आते हैं कि एक जाति अथवा समुदाय के पुरुष दूसरी जाति अथवा समुदाय की स्त्रियों के साथ बलात्कार करते हैं। ऐसे मामलों पर भी चर्चाये तो होती हैं, परन्तु दबी जुबान से, क्योंकि जब मामला दो जाति अथवा समुदायों के बीच होता है तो वे एक दूसरे को ही दोषी ठहराते हैं।

यदि किसी दलित स्त्री के साथ रात के अंधेरे में कोई बदतमीजी कर दे तो लोग, खासकर बड़ी जातियों के लोग यह कहते नहीं चूकते कि : ''क्या जरूरत थी उस स्त्री को यूं अंधेरी रात में अकेले जाने की, वो अपने आपको ज्यादा तीसमार खां समझती है'' और ऊंची जाति के लोग उसे उचित ठहराते हुए ऐसी टिप्पणी करते हैं – इन दलितों के बहुत दिमाग खराब हो गये हैं, इनकी औकात जताने के लिये ये बहुत ज़रूरी है कि इनकी औरतों पर हमले किये जायें, क्योंकि लोग यह मानकर चलते हैं कि कम से कम इज्जत बचाने के लिये यह लोग थोड़ा पीछे हटेंगे और दबकर रहना सीख जायेंगे।

इन्हीं में से कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो शोषित स्त्री के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं और उसकी मजबूरी को समझने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं - दलित स्त्री रात के अंधेरे में पड़ोसी गांव में काम की तलाश में जा रही थी क्योंकि उसे अपनी गरीबी से लड़ना था, अपने भूखे बच्चों के पेट भरने थे। इसी प्रकार छोटी जाति की स्त्रियों की इज्जत पर हमले को लेकर लोग ऐसी भी टिप्पणी करते हैं कि यह और इनके पुरुष बड़ी जाति के दबंगों से बदला नहीं ले सकते।

कुल मिलाकर इन तमाम टिप्पणियों से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि समाज पिछड़ी जातियों व गरीब महिलाओं से यह अपेक्षा रखता है कि सताये जाने पर वे पलट कर वार नहीं करेंगे। ऐसी ही अपेक्षा बड़ी जातियों के पुरुषों को भी छोटी जाति की स्त्रियों से रहती है। उन्हें अपनी जातीय उच्चता तथा संपन्नता का घमण्ड रहता है। जाति के आधार पर लोगों के दमन करने के पीछे यही प्रवृति काम करती है कि जिसमें ताकत है, वह कमज़ोर वर्ग को दबायेगा और बलपूर्वक अपने नियंत्रण में रखेगा।

भारतीय समाज में पांरपरितक रूप से जातीय भेद और लैंगिग भेद विद्यमान रहा है। सामाजिक स्तर तथा सामाजिक भूमिकाएं समाज में विशेष महत्व रखती हैं। स्तरों के

आधार जातीय भी रहे हैं, आर्थिक भी, बाहुबल भी और लैंगिक भी। क्योंकि समाज में स्त्रियों से सदा यह अपेक्षा रहती है कि वे पलट कर वार नहीं करेंगी। इज्जत के कारण या समाज में अपनी स्थिति के कारण वे अपने ऊपर होने वाले अत्याचार को सह जायेंगी, अपनी इज्जत लूट लिए जाने पर भी चुप रहेंगी। इसलिए उच्च अपेक्षा कृतज्ञ ज्यादा सम्पन्न व उच्च समझने वाले लोग या पुरुष को थी, तुलना में ज्यादा सक्षम व समर्थ समझने वाले लोग स्त्रियों पर अनेक प्रकार के हमले करते रहे, और ऐसी ज्यादतियाँ जब स्त्रियों के लिए असहनीय हो गई तो उन्होंने अपने अस्तित्व को बचाने के लिए, अपनी अस्मिता की रक्षा करने के लिए, समाज में अपने लिए उपयुक्त स्थान बनाने के लिए समय-समय पर अपनी आवाज़ उठाई और सामाजिक रूप से वे आंदोलनों में उतरीं। ऐसी पृष्ठभूमियों से भारत में महिला आंदोलनों का जन्म हुआ, क्योंकि ये आंदोलन एक ही जेंडर, स्त्री जेंडर से सम्बंधित थे, इसलिए इन्हें जेंडर आंदोलन कहा जाता है। (संदर्भ, IGNOU, 2001, ई.एस. ओ.-12 : भारत में समाज, खंड-7)

सोचिये और करिये 1

एक सप्ताह तक लगातार ऐसी दो काम-काजी स्त्रियों की दैनिक गतिविधियों का निरीक्षण कीजिए जो अलग-अलग सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि की हों। उनके द्वारा संपन्न होते घर में तथा घर के बाहर कामों का पता लगाइए। अब 20 पंक्तियों में स्त्रियों की दोहरी भूमिकाओं पर निबंध लिखिए। आपस में अपने निबंधों की अदला बदली अपने साथियों से कीजिये और जानिए, अपने अध्ययन केंद्र पर।

9.3 भारत में महिला आंदोलन : संदर्भ

एन. देसाई ने अपनी किताब 'फ्रॉम ऐकौमोडेशन टू आर्टीक्युलेशन, विमिन्स बाई मूवमैन्ट इन इण्डिया' में भारतीय समाज में स्त्रियों की दुदर्शा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि आजादी के बाद भी भारतीय स्त्रियों की दशां इतनी खराब है कि उन्हें तिल-तिल कर मरने पर विवश किया जा रहा है। 1947 में भारत को आज़ादी मिलने के पहले के दशकों में स्वाधीनता आंदोलन में स्त्रियों की भागीदारी और अपने हितों की हिमायत प्रबल थी। परन्तु आज़ादी के बाद स्त्रियों की समस्याओं पर सरकार ने ठीक से ध्यान केंद्रित नहीं किया और आज़ादी के तीस वर्ष बाद तक भी स्त्रियों की दशा में कोई सुधार नहीं आया।

1953 में सरकार ने सेंट्रल वैलफेयर बोर्ड का गठन किया था। इसमें अनेक समाज सेवी महिलाओं को भागेदारी करने का अवसर मिला। अग्रणी तथा समाज सेवी महिलाओं ने अनेक संस्थाओं का गठन किया जिनका उद्देश्य महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करना था। इन संगठनों को सेंट्रल सोशल वैलफेयर बोर्ड से अनुदान मिलने लगा। बड़ी संख्या में अग्रणी महिलायें सरकारी सुविधाओं का लाभ उठाते हुए संतोषपूर्वक समाज सेवा के कार्य करने लगीं। इसका नतीजा यह हुआ कि आजादी से पहले के दशकों में महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ लड़ने का जो जुनून पैदा हुआ था वो इस दौर में आकर उतर गया। योजना आयोग के अधीन अनेक महिला कल्याणकारी योजनाओं पर काम होने लगा। सार्वजनिक क्षेत्र के कामों में नौकरशाही की ढीलों तथा नागरिकों की कम भागीदारी के कारण ये योजनायें ज़्यादा सफल नहीं हो पाई। चौथी पंचवर्षीय योजना में सबसे ज्यादा ज़ोर शिक्षा पर दिया गया था। उसके बाद स्वास्थ्य पर उसके बाद समाज कल्याण पर और सरकार यह मानकर चल रही थी कि इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से महिलाओं को विकास करने के अवसर प्राप्त होंगे और उनकी अनेक संबंधित समस्याओं का समाधान स्वतः ही निकल आयेगा।

1995 में आर. कुमार ने टिप्पणी की थी कि 1970 में महिलाओं की दशा को सुधारने के लिये जो आंदोलन भारत में शुरू हुआ वो पहले वाले आंदोलनों से नितांत भिन्न था। इसमें अनेक परिवर्तनकारी विचारधारा वाले लोग शामिल हो गये। इनमें से प्रमुख आंदोलन थे- शाहदा (shahada), और मंहगाई विरोधी महाराष्ट्र में तथा 'सैल्फ एम्प्लॉयड विमिन्स एसोसियेशन्स (SEWA)' और नवनिर्माण आंदोलन गुजरात में। शाहदा आंदोलन महाराष्ट्र के धूलिया जिले में भील जाति के लोगों ने आरम्भ किया था। वे वहां के भूमिपतियों से बहुत परेशान थे, उन्हीं दिनों महाराष्ट्र में सूखा और अकाल पड़ा था। जिससे लोगों की गरीबी और विवशता बहुत बढ़ गई थी।

वास्तव में शाहदा आंदोलन 1960 के दशक के अंतिम दिनों में लोक गायकों की मंडलियों द्वारा आरंभ किया गया था। 1970 के आरंभ में इस आंदोलन में नवसाम्यवादी जुड़ गये। उन्होंने झीलों को संगठित कर 1972 में 'श्रमिक-संगठन' का गठन किया। शाहदा आंदोलन को आगे बढ़ाने में पुरुषों की तुलना में महिलाएं ज़्यादा रुचि ले रही थी। इन्होंने महिलाओं के विरुद्ध होने वाली घरेलू हिंसा तथा अन्य अनेक प्रकार के महिला उत्पड़न के खिलाफ मोर्चा खोल दिया। ग़रीब पतियों द्वारा महिलाओं को पीटने की परम्परा को लेकर, महिलाओं में बहुत गुस्सा था। गांव-गांव में महिलाओं के झुंड निकलते और शराब की भट्टियों तथा ठेको पर हमला बोलते थे और उन्हें तहस-नहस कर डालते थे। महिलाए ग़रीब पतियों को सड़क पर दौड़ा-दौड़ा कर पीटती थी और उसे पकड़ कर उसकी पत्नी के पास ले जाती थी और उसे पत्नी से माफी माँगने पर विवश करती थीं।

1972 में ही पहली बार महिलाओं ने गुजरात के नगर अहमदाबाद में स्त्रियों की मजदूर संघ (Trade Union) का गठन किया। जिसे गांधीवादी समाज से विचार के सहयोग से टैक्सटाइल लेबर एसोसियेशन से जोड़ दिया गया। इस मजदूर संघ (ट्रेड यूनियन) को गठित करने का श्रेय महिला मामलों की क्रांतिकारी अग्रणी विदुशी इला भट्ट को जाता है। इला भट्ट ने टैक्सटाइल लेबर एसोसियेशन के साथ मिलकर महिला श्रमिकों के हितों के संरक्षण के लिए बहुत काम किये। इस महिला मजदूर संघ (ट्रेड यूनियन) को 'सैल्फ एम्पलॉयड विमिन्स एसोसिशन (सेवा) नाम दिया गया था। यह एक शुद्ध महिला व्यापार संकट था जिसमें महिलाएं ही काम करती थी और उनका मकसद महिलाओं के हितों को प्राथमिकता देना था। इस संगठन की सदस्या ज़्यादातर गरीब व श्रमिक महिलाएं थीं, जिनमें खेतों में मज़दूरी करने वाली महिलाओं से लेकर सिर पर टोकरी रखकर गली-गली घूमकर बेचने वाली महिलाएँ तथा पटरी पर समान बेचने वाली महिलाएं भी शामिल थीं। इन महिलाओं को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था तथा संगठन को इनकी समस्याएं उठाने में बड़ी दिक्कते आती थीं।

1970 के दशक के आरंभिक दिनों में महाराष्ट्र में सूखा पड़ने और महामारी फैलने से कीमतों में उछाल आ गया था। इसके खिलाफ महिलाओं ने एक जुट होकर भारी लड़ाई लड़ी।

1973 में समाजवादी पार्टी की नेता भृणाल गौरे तथा साम्यवादी दल की नेता अहिल्या रांगनैकर ने अन्य अग्रणी महिलाओं के साथ मिलकर 'विमिन्स एण्टी प्राइज़ फ्रंट' नामक क्रांतिकारी संगठन का निर्माण किया। इस संगठन ने देश के विभिन्न भागों में धूम-धूम कर बढ़ती मंहगाई की खिलाफत करने के लिए महिलाओं को तैयार किया। बहुत जल्दी इस संगठन ने उपभोक्ता संरक्षण के लिए आंदोलन चलाया। सरकार से मांग थी कि वह चीज़ों के दाम तय करें तथा आवश्यक आवश्यकताओं से जुड़ी चीज़ों को उपभोक्ताओं तक पहुंचाने की व्यवस्था करें।

साथ ही यह आंदोलन पूरे गुजरात में फैल गया और 1974 में दूसरे नवनिर्माण आंदोलन के नाम से जाना जाने लगा। वास्तव में 'नवनिर्माण आंदोलन' मूल रूप से छात्रों द्वारा आरम्भ

किया गया। मंहगाई, जमाखोरी, भ्रष्टाचार आदि के विरुद्ध आंदोलन था जिसे सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण का भी आर्शीवाद प्राप्त था। बिहार में वे तत्कालीन इंदिरा जी की सरकार के विरुद्ध जनहित विरोधी तत्वों पर नियंत्रण न कर पाने का आरोप लगाते हुये आंदोलन चला रहे थे, जो बाद में देश के अन्य हिस्सों में भी फैल गया।

नवनिर्माण आंदोलन आगे चलकर व्यापक रूप से मध्यम वर्ग का आंदोलन बन गया जिसमें हज़ारों महिलाएं शामिल थीं। यह आंदोलन आगे चलकर इतना उग्र हो गया कि इस पर काबू पाने के लिए पुलिस को कठोर कार्रवाई करनी पड़ी जिसमें 90 से ज्यादा लोगों की जानें गई।

उसी वर्ष जब नवनिर्माण आंदोलन अपने चरम पर पहुंचा और उसका कठोरता से दमन किया गया, हैदराबाद में समकालीन महिला आंदोलनकारियों ने माओवादी आंदोलन से जुड़ी महिलाओं की मदद से 'महिला प्रगतिशील मोर्चा' का गठन किया। शाहदा आंदोलन की तरह वामंपथी माओवादी महिलाओं ने महिलाओं के शोषण और दमन के विरुद्ध खुलकर संघर्ष किया।

1975 में महाराष्ट्र में सभी नारीवादी समाजसेवी एकत्रित हुए और उन्होंने माओवादी महिला मोर्चा की तर्ज पर पुरोगामी स्त्री संगठन का गठन किया तथा मुम्बई में माओवादी महिलाओं ने स्त्री मुक्ति संगठन का निर्माण किया। इसी वर्ष 8 मार्च को पहली बार भारत में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। लाल निशान पार्टी नामक संगठन ने अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस को अपनी पार्टी के विशिष्ट कार्यक्रमों में शामिल किया।

अगस्त महीने में मराठी में प्रकाशित होने वाली 'साधना' का महिलाओं की समस्या पर विशेषांक निकाला। सितम्बर के महीने में दलित तथा समाजवादी संगठनों ने मिलकर देवदासी समस्या पर सभा का आयोजन किया, तथा अक्टूबर के महीने में अनेक माओवादी विचारधारा से जुड़े संगठनों जैसे लाल निशान पार्टी तथा श्रमिक संगठन आदि ने मिलकर पुणे में संयुक्त महिला मुक्ति संघर्ष नामक महासभा का आयोजन किया।

19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में ज्योतिबा फुले के नेतृत्व में दलितों ने महिलाओं के शिक्षा के अधिकार का मामला जोर-शोर से उठाया था। विधवाओं के पुनर्विवाह का मामला भी व्यापक रूप से उठाया गया था। ''जनवेदना'' नामक दलितों के एक मराठी समाचार पत्र ने महिलाओं की समस्या पर एक विशेषांक निकाला जिसका शीर्षक था : थर्ड वर्ल्ड विमिन्स होल्ड अप हाफ द स्काई''। यह शीर्षक चीनी क्रांति के लोकप्रिय नारे से लिया गया था। इसका उद्देश्य विश्व में स्त्रियों के महत्व को रेखांकित करना था।

इस घटना के कुछ महीनों के बाद दलित आंदोलन से जुड़ी महिलाओं ने एक नया संगठन बनाया जिसका नाम 'महिला समता सैनिक दल' था।

सोचिये और करिये 2

पिछड़े सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि की पांच महिलाओं से बातचीत करें। उनसे यह पूछें कि उनके पास कितनी जमीन है और जिस घर में वे रहती हैं, उनमें उनके पास क्या-क्या संसाधन हैं, खेती के अलावा कोई अन्य आय का साधन भी है कि नहीं। अब इससे प्राप्त आंकड़ों के आधार पर 'महिलाओं के सम्पत्ति पर अधिकार' नामक शीर्षक पर बीस पंक्तियों में एक निबन्ध लिखें, तथा अपने अध्ययन केन्द्र के अन्य छात्रों के निबन्धों से अपने निबन्ध की अदला-बदली करो और जानो कि किसने क्या-क्या लिखा।

1975 में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर दी और महिलाओं के आंदोलन जिस तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे, उतनी ही तेज़ी से उनमें व्यवधान आ गये। अनेक राजनीतिक संगठनों को भूमिगत होना पड़ा, हज़ारों समाजसेवियों को गिरफ्तार कर जेलों में डाल दिया गया तथा जो समाजसेवी व आंदोलनकारी गिरफ्तार होने से बच गये, वे नागरिकों के अधिकारों जैसे- बोलने की आज़ादी, विरोध प्रकट करने की आज़ादी तथा राजनैतिक कैदियों के अधिकारों को ज़ोर-शोर से उठाने में लग गये।

1977 में जब आपातकालीन स्थिति समाप्त हुई और फिर से लोकसभा चुनाव हुए, तब 1978 में जनता पार्टी की सरकार बनी। नवगठित सरकार ने पहले से चल रहे महिला आंदोलनों के प्रति सहयोग का रूख अपनाया। कुछ आंदोलन नये रूप में नये उत्साह के साथ सक्रिय हो गये। पूरे देश में महिलाओं ने अनेक नये संगठनों को जन्म दिया। इनमें से ज्यादातर संगठनों की जड़ें महानगरों तक ही सीमित रहीं।

9.3.1 आरम्भिक महिला आंदोलन

इन सभी आंदोलनों की विशेषता यह थी कि इन्होंने अपने आपको महिलावादी आंदोलन घोषित कर दिया था, जब कि सच्चाई यह थी कि इन महिला आंदोलनकारी संगठनों के ज़्यादातर सदस्य वामपंथी विचारधारा के थे जो महिलावाद को बुर्जुआ सोच मानते थे और उसे मध्यम वर्ग तथा उच्च मध्यम वर्ग से जोड़ कर चलते थे।

यद्यपि ये महिला आंदोलनकारी अपने आपको महिला के हितों के लिए समर्पित स्वतंत्र निकाय मानते थे, परन्तु सच्चाई यह थी कि इनमें से ज़्यादातर राजनैतिक दलों से जुड़े थे। वामपंथी दलों से जुड़े महिला आंदोलनकारियों की संख्या सबसे ज्यादा थी। यह भी एक सच्चाई थी कि इन सबकी सोच एक दूसरे से अनेक मामलों में मेल नहीं खाती थी। महिला आंदोलन से जुड़े सभी सदस्यों के मामले में तीन बातें बहुत स्पष्ट थीं। पहली, कि आंदोलन के आरंभिक वर्षों में इन महिलाओं ने अपने आपको परिभाषित करने में व्ययतीत किया। दूसरी, यह थी कि इनके अधिकतर सदस्य वामपंथी विचारधारा से प्रेरित थे तथा तीसरी, यह कि अधिकतर सदस्य अच्छे पढ़े लिखे तथा मध्यमवर्गीय शहरों के थे।

इन्हीं लोगों ने 1970 के अंतिम दशकों में आरंभ हुये तथा 1980 के आरंभिक दशकों तक मौजूद रहे महिला आंदोलनों पर अपनी छाप छोड़ी। 1977 में महिला दक्षता समिति नामक महिला संगठन का गठन हुआ। इसके सदस्य समाजवादी विचारधारा से जुड़े थे। नवगठित मोरारजी देसाई की जनता पार्टी सरकार ने इस संगठन को खुला सहयोग दिया, यद्यपि ज़्यादातर नारीवादी यह मानते थे कि राजनैतिक दल महिलाओं के साथ न्याय नहीं कर सकते, परन्तु फिर भी उन्हें यकीन था कि राजनैतिक दल महिलाओं की समस्याओं के समाधान हेतु सुधार लाने में सहयोग कर सकते हैं। कुछ लोग तो खुल्लमखुल्ला यह कहा करते थे कि राजनैतिक दलों के अपने निहित स्वार्थों कुछ इस तरह के हैं कि वे महिलाओं के हितों की रक्षा को प्राथमिक नहीं दे सकते।

1970 के दशक से 1980 के दशकों तक नारीवादी आंदोलनों का नेतृत्व मध्यम वर्गो व शहरी नागरिकों ने किया। इसी के समानांतर ग्रामीण अंचल में नारीवादी चेतना देखने को मिली और देहातों में भी नारीवादी आंदोलनों ने गति पकड़ी। जो बटाईदार आंदोलन 1950 में आंध्रप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में आरंभ हुआ था, वह 1970 के दशक के उत्तरार्ध में फिर से गति पकड़ गया। सरकार ने उस क्षेत्र को विवादित क्षेत्र घोषित कर दिया। तेलंगाना के करीमनगर जिले की महिलाओं ने 1960 में आरंभ हुये खेतिहर मज़दूरों के आंदोलन में विशेष रूप से भागीदारी की। इस आंदोलन के दौरान देवम्भा नामक एक आंदोलनकारी महिला का अपहरण कर लिया गया। उसके पति की हत्या कर दी गई। इस सब के पीछे स्थानीय

ज़मींदारों का हाथ था। ऐसी घटनाओं ने स्त्रियों को अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित किया और 1970 के दशक के उत्तरार्ध में हैदराबाद में 'स्त्री शक्ति संगठन' नामक संस्था का गठन हुआ। इस संगठन ने महिलाओं के शोषण से जुड़ी समस्याओं को जोर-शोर से उठाया और महिलाओं को लगने लगा कि अपने अधिकारों की लड़ाई लड़नी है, पुरुषों के अत्याचारों से मुक्ति पानी है और स्त्रीयों को दबंगों को चुनौती देती है तो स्त्री हितों की रक्षा करने वाले स्वतंत्र महिला संगठनों का संचालन करना पड़ेगा। इनके प्रयासों से अनेक महिला समितियों का गठन हुआ जिन्होंने पत्नी-प्रताड़ना तथा जमींदारों द्वारा स्त्रियों के यौन-षोषण के विरुद्ध आवाज उठाई।

इसी दौर में बिहार में छात्रों के संगठन 'छात्र-युवा संघर्ष वाहिनी' ने बिहार के बोध गया जिले में नारीवादी समस्याओं को उठाया। बोध गया में एक मंदिर के पुजारी ने धार्मिक गतिविधियों की आढ़ में बहुत बड़े भू-क्षेत्र पर कब्जा जमा लिया था। इसके खिलाफ खेतिहर मज़दूरी करने वाली महिलाओं ने छात्र युवा संघर्ष वाहिनी को मदद से आवाज़ उठाई जो कृषि श्रमिक आंदोलन में बदल गई। शाहदा आंदोलन तथा तेलंगाना के बटाईदार आंदोलन की तर्ज पर महिला आंदोलन ने सरकार पर दबाव बनाया कि वह पुजारी से ज़मीन छीन कर उसे खेतिहर महिलाओं के नाम करें। 1979 में बोध गया आंदोलन से जुड़ी महिला आंदोलनकारियों ने यह मांग रखी कि ज़मीन के प्लॉट भूमिहीन महिलाओं व पुरुषों के नाम कर दिए जाये।

9.3.2 दहेज विरोधी आंदोलन

भारतीय समाज में लड़की की शादी में लड़की के पिता से दहेज में मोटी रकम माँगने की प्रथा तथा दबंगों द्वारा स्त्रियों का यौन शोषण करने की प्रथा चलन में थी। जागरूक महिलाओं ने स्त्री शोषण से जुड़ी इन दोनों समस्याओं के खिलाफ कड़ा ऐतराज जताया। महिलाओं के प्रगतिशील संगठनों ने 1975 में हैदराबाद में दहेज तथा बलात्कार के विरोध में बड़ा संघर्ष किया। महिलाओं को इन अत्याचारों से बचाने के लिए जगह-जगह धरने दिये गए, जुलूस निकाले गये। यद्यपि इस आंदोलन ने इलाके को हिलाकर रख दिया था और पूरे देश को यह संदेश दिया था कि इस तरह के अत्याचारों को अब महिलाएं बर्दास्त नहीं करेगी, परन्तु इसी वर्ष देश में आपातकाल की घोषणा हो जाने के कारण यह आंदोलन तितर-बितर हो गया।

1977 में जब आपातकालीन स्थिति खत्म हुई तो दिल्ली में जोरदार दहेज विरोधी आंदोलन शुरू हुआ। दहेज के दबाव में अनेक नव-विवाहिताओं को भारी प्रताड़नाओं से गुजरना पड़ा था, अनेक महिलाओं को जिंदा जला दिया गया था अथवा आत्महत्या करने पर विवश किया गया था। देश अब इस घिनौने अपराध के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने के लिए एक जुट होता दिख रहा था।

यद्यपि दिल्ली में दहेज विरोधी आंदोलन सबसे पहले महिला दक्षता समिति ने चलाया था, परन्तु 1979 में बनी 'स्त्री संघर्ष' नामक संस्था ने दहेज प्रथा तथा दहेज से उत्पीड़न से जुड़ी समस्याओं को लेकर पूरे देश का ध्यान अपनी ओर खींचा।

1 जून, 1979 को दिल्ली की युवा महिला तरविंदर कौर की दहेज के कारण उसके ससुराल वालों द्वारा की गई हत्या के विरोध में दिल्ली में जबरदस्त आंदोलन हुआ। उस महिला ने मरने से पहले अपने बयान में बताया था कि उसके ससुराल वालों ने उसे जिंदा जलाकर मार डालने का प्रयास किया क्योंकि उसके माता-पिता ससुराल वालों की दहेज की मांग को पूरा नहीं कर पाये थे।

'नारी रक्षा समिति' ने 12 जून 1979 को दिल्ली में नारी जुलूस निकाला। पूरी दिल्ली इसमें भाग लेने के लिए उमड़ पड़ी थी। मीडिया ने इस प्रदर्शन को भारी कवरेज़ दी और पूरे देश में दहेज-प्रताड़ना के खिलाफ ज़ोरदार शेष उत्पन्न हो गया।

टेलिविज़न चैनलों पर दहेज हत्या को लेकर बहस होने लगी। समाचार पत्र दहेज से होने वाली मौतों तथा आत्महत्याओं को समाचारों से भरने लगे। पूरे देश में मीडिया सक्रिय हो गया था। महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों की सूचनाओं को खोज-खोज कर समाचार पत्रों में प्रकाशित किया जा रहा था तथा रेडियो व टेलीविज़न पर प्रसारित किया जा रहा था।

इस बीच अनेक ऐसे मामले खुले जो आत्महत्याओं के थे। गहन प्रयास करने पर उनके पीछे के सत्य उजागर हुये तो पता लगा कि ज्यादातर मामले दहेज के थे। नवविवाहिताओं को दहेज के लिए इस कदर सताया गया था कि दुखी होकर उन्होंने आत्महत्याओं को अंजाम दिया था। अनेक परिवारों ने बेटियों के ससुराल वालों के खिलाफ मुकदमें दर्ज करवाये। महिला आंदोलनकारियों से दहेज विरोधी विषय छात्र संगठनों, शिक्षक संघों तथा ट्रेड यूनियनों ने भी उठाये और पूरे देश में यह संदेश पहुंचा दिया गया कि किसी बेटी को विवाह के बाद दहेज के लिए प्रताड़ित नहीं किया जाना चाहिए।

1980 में, दहेज विरोधी आंदोलन के ठीक एक साल बाद सरकार ने दहेज विरोधी अपराधों पर लगाम लगाने के लिये एक कानून पास किया जिसके अंतर्गत दहेज की मांग करना एक जघन्य अपराध माना गया और यह नियम बना दिया गया कि यदि किसी स्त्री की शादी के पांच वर्ष बाद तक ससुराल में कभी भी मृत्यु होती है, तो पुलिस उसकी जांच करेगी।

1982 में इस कानून के तहत न्यायालय का पहला फैसला आया। दिल्ली के एक सत्र न्यायालय के न्यायाधीश ने दो अभियुक्तों को दहेज हत्या का अपराधी करार दिया और उन्हें मृत्युदंड की सजा सुनाई, लेकिन इस सजा को दिल्ली के उच्च न्यायालय ने 1983 में उलट दिया। इसके विरुद्ध महिला आंदोलनकारियों ने तथा अन्य राजनैतिक दलों के कार्यकर्ताओं ने देशव्यापी प्रदर्शन किये और उन्हें कोर्ट की अवमानना का दोषी करार दिया गया। 1985 में सुप्रीम कोर्ट ने उच्च न्यायालय के फैसले को उलट दिया और अपराधियों को आजीवन कारावास की सजा सुनाई। दिसम्बर 1983 में आपराधिक कानून में संशोधन करते हुए एक नया कानून पास किया गया, जिसके अनुसार पत्नी को सताना एक जघन्य अपराध घोषित किया गया, और इसे एक गैर-जमानती अपराध माना गया और कम से कम व्यक्ति को तीन वर्ष का कारावास और जुर्माने की सजा का प्रावधान किया गया। पति के ऐसे कठोर व्यवहार को इस कानून के अंतर्गत मानसिक तथा शारीरिक यातना की श्रेणी में रखा गया। इसके अलावा धारा-113 ए के साक्ष्य संबंधी कानून में संशोधन किया गया जिससे कि न्यायालय आत्महत्या के मामलों में दखल दे सके, अंततः आपराधिक प्रविधि की धारा 174 में भी संशोधन किया गया। जिसके अनुसार विवाह के बाद 7 वर्ष की अवधि में यदि किसी स्त्री की मृत्यु हो जाती हैं तो उसके मृत शरीर का अंतिम संस्कार करने से पहले पोस्टमार्टम करना अनिवार्य कर दिया गया।

9.3.3 बलात्कार के विरुद्ध आंदोलन

दहेज संबंधी कानून बनने के बाद कुछ माह बाद पुलिस की हिरासत में बलात्कार के मामले सामने आ गये, आंदोलनकारी महिलाओं ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। 1970 के दशक के उत्तरार्ध में जब नारीवादी संगठन बने तब उनके सामने पुलिस और ज़मींदारों द्वारा

बलात्कार के मामले आये थे। इन मामलों के विरुद्ध माओवादी आंदोलन ने कड़ा संघर्ष किया था। 1978 में पुलिस हिरासत में बलात्कार के मामले ने नारीवादी आंदोलनकारियों को आक्रोषित कर दिया। घटना हैदराबाद की थी, हैदराबाद थाने में रमीज़ा बी नामक मुस्लिम महिला के साथ कई पुलिसवालों ने बलात्कार किया था, उसका पति रिक्शा चालक था, जब उसने पुलिस वालों के खिलाफ आवाज उठाई तो उसकी हत्या कर दी गई। हैदराबाद में इसके विरुद्ध रोष भड़का उठा। 22000 व्यक्तियों ने सड़कें जाम कर दीं, टेलीफोन के तार काट डाले गये, इमारतों पर पथराव किये गये, पुलिस थानों के बाहर खड़ी गाड़ियों में आग लगा दी गई, आंदोलनकारी इतने उग्र हो गये थे कि स्थिति बेकाबू हो गई, सेना बुलानी पड़ी, यह आंदोलन तब जाकर थमा जब राज्य सरकार बर्खास्त कर दी गई और बलात्कार तथा हत्या की जांच करने के लिये आयोग बिठा दिया गया।

1979 में महिलाओं ने एक बार फिर पुलिस तथा भू-स्वामियों के विरुद्ध बलात्कार के मामलों को लेकर देश के अनेक भागों में प्रदर्शन किये। 1980 तक प्रदर्शनकारी अलग-अलग जगहों पर प्रदर्शन करते रहे थे। इसी दौरान पुलिस द्वारा बलात्कार के मामले में सजा सुनाई गई। इस सजा के विरुद्ध महाराष्ट्र के चार वरिष्ठ वकीलों ने एक पत्र लिखा और वह पत्र जब महिला आंदोलनकारियों को मिला तो विरोध की चिनगारी भड़क उठी। कई साल पहले 17 वर्षीय एक लड़की जिसका नाम मथुरा था के साथ कई पुलिस वालों ने बलात्कार किया। मुकदमा दर्ज हुआ और सत्र न्यायालय ने अपराधियों को दोष मुक्त करार देकर छोड़ दिया। जब उस लड़की की ओर से मामला उच्च न्यायालय में पहुंचा और फिर बाद में सर्वोच्च न्यायालय में पहुंचा, धमाका तब हुआ जब सर्वोच्च न्यायालय में भी सभी बलात्कारी पुलिसवालों को निर्दोष घोषित कर दिया। अभियुक्तों को छोड़ने के पीछे तर्क यह दिया गया कि बलात्कार से पहले मथुरा अपने पुरुष मित्र (Boy friend) के साथ कई बार यौन संबंध बना चुकी थी और वो यौन संबंधों की आदती थी। इसलिये उसके साथ पुलिस द्वारा किया गया बलात्कार अपराध नहीं माना जा सकता। वकीलों द्वारा लिखे गये पत्र में उच्चतम न्यायालय के तर्क को चुनौती दी गई थी।

महिला आंदोलनकारियों ने तथा महिलाओं के हितों के लिये संघर्ष करने वाली वामपंथी तथा अन्य नारीवादियों ने 1978-79 में बलात्कार के विरुद्ध देशव्यापी प्रदर्शन आरंभ कर दिये। मुम्बई के नारीवादी संगठन 'फोरम अगेन्स्ट रेप' ने यह फैसला किया कि मथुरा बलात्कार मामले को दुबारा खुलवाया जायेगा। फरवरी 1980 में इस संगठन का नाम 'फोरम अगेन्स्ट ऑप्रेरशन ऑफ विमिन' हो चुका था। इस संगठन ने देश भर के तमाम नारीवादी संगठनों को पत्र लिखे और मांग की कि 8 मार्च, 1980 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर पूरा देश एक साथ मथुरा केस को फिर से चलाने की मांग करे। देश के सात प्रमुख महानगरों ने इस पत्र पर संज्ञान लिया और आठ मार्च को ज़बरदस्त प्रदर्शनों का आयोजन किया गया। उसमें मांग की गई थी कि मथुरा केस को दोबारा खोला जाय और भारतीय आपराधिक कानून की उस धारा को बदला जाये जिसके अंतर्गत बलात्कार कानून आता है। नारीवादी संगठनों, समाजवादी तथा साम्यवादी संगठनों ने इस मामले को राजनैतिक स्तर पर उठाया। इसका परिणाम यह हुआ कि पूरे देश में पुलिस हिरासत में किये गये बलात्कार के खिलाफ विरोध तेज हो गया। जिस तरह दहेज हत्याविरोधी मामले को लेकर पूरे देश ने संज्ञान लिया था, इसी तरह पुलिस बलात्कार के मामले को लेकर भी पूरे देश ने संज्ञान लिया। राजनैतिक दलों तथा व्यापार संघों ने भी इसके खिलाफ आवाज उठाई।

जब कई महीने तक लगातार देश भर में प्रदर्शन होते रहे तब सरकार की नींद टूटी, और सरकार ने एक विधेयक पुलिस हिरासत में बलात्कार को केन्द्र में रखकर तैयार किया जिसके अंतर्गत किसी स्त्री द्वारा बलात्कार का आरोप लगाये जाने पर दस वर्ष की सजा का प्रावधान था। कानून में इस तरह की परिवर्तन किया गया कि पहले बलात्कार पीड़िता

को सबूत देना होता था कि उसके साथ वास्तव में बलात्कार हुआ और अब नये कानून के अनुसार बलात्कार का आरोप लगाये जाने के बाद अपने आपकों निर्दोष साबित करने के लियें सबूत जुटाने का दायित्व बलात्कारी पर डाला गया। लेकिन इस कानून का शीघ्र ही जबरदस्त विरोध भी आरंभ हो गया। विरोध करने वाले लोगों ने अपने विरोध के समर्थन में समाचार पत्रों में बड़े-बड़े लेख लिखे और उन्होंने यह बात उठाई कि इस तरह कोई भी स्त्री बदले की भावना से यदि किसी पुरुष पर बलात्कार का आरोप लगा देगी तो निर्दोष व्यक्ति भी अपराधी बन जायेगा और अपने आपको निर्दोष साबित करने के लिये उसे व्यर्थ ही इतने प्रयत्न करने होंगे।

1988 में हिरासत में बलात्कार के मामले में सुमन रानी नामक महिला के मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक फैसला सुनाया जिसके अंतर्गत सुमन रानी के बलात्कारी की सजा में कटौती कर दी गई थी। इसके लिये न्यायालय ने तर्क यह दिया कि सुमन रानी का पहले से कोई प्रेमी था। न्यायालय का यह मानना था कि बलात्कार के मामले में सजा देते समय पीड़िता के चरित्र को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिये।

उदाहरण के लिये, दिल्ली में 'पीपूल्स यूनियन ऑफ डैमोक्रेटिक राइट्स' नामक संगठन ने पता लगाया कि अनेक ऐसे मामले होते हैं जिसमें लड़कियां उन लड़कों के साथ भाग जाती हैं जिन्हें वे प्यार करती हैं और उनके माता-पिता उन्हें शादी की अनुमति नहीं देते। फिर पुलिस में यदि मामला चला जाता है तो पुलिस उन्हें ढूंढ निकालती है। ज़्यादातर मामलों में लड़कियों को उन्हें भागकर ले जाने वाले लड़कों से इस आधारपर अलग कर दिया जाता है कि वे उन्हें अनकी मर्जी के खिलाफ भगाकर ले गये थे। इसके बाद पुलिस वाले उन लड़कियों को हिरासत में रखकर उनके साथ बलात्कार करते हैं।

1980 में नारीवादी आंदोलनकारियों ने सरकार से बलात्कार पीड़िता महिलाओं के पक्ष में कानून बनवाने में जो सफलता प्राप्त की थी, उसे सुमन रानी केस में सजा सुनाते समय सुप्रीम कोर्ट ने भारी क्षति पहुंचाई। नारीवादी आंदोलनकारी यह चाहते थे कि बलात्कारी को सजा देते समय पीड़िता के चरित्र को संज्ञान में न लिया जाय, परन्तु सुप्रीम कोर्ट ने पीड़िता के चरित्र को संज्ञान में लेते हुए सजा सुनाई। नारीवादी संगठनों ने इस फैसले की डट कर विरोध किया। जब सरकार पर दबाव पड़ा, तो उसने नारीवादी आंदोलनकारियों से बात की और उन्हें आश्वासन दिया कि शीघ्र ही सरकार बलात्कार संबंधी कानून में एक और संशोधन करेगी और इस बार संशोधन साक्ष्य संबंधी नियमों को लेकर किया जायेगा। लेकिन कानून को लागू करने और कानून का दुरूपयोग करने के अवसर तो अब भी ज्यों के त्यों खुले पड़े हैं इनका समाधान क्या हो, यह समझने में नहीं आता।

बोध प्रश्न 1

नोटः 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) लिंग तथा जेंडर के बीच अंतर स्थापित कीजिये।

.....

.....

.....

.....

ii) सही उत्तर के आगे सही का निशान लगाइये और गलत उत्तर के आगे गलत का

अ) स्वाधीनता पूर्व भारत में जेंडर समानता के लिये कोई प्रयास नहीं किया गया। ( )

ब) महाराष्ट्र के एक जिले में भारत में शाहदा आंदोलन का आरम्भ भील जाति के भूमिरहित कृषि मजदूरों ने किया। ( )

स) 1975 में भारत के महाराष्ट्र राज्य में बड़ी संख्या में नारीवादी आंदोलन हुए। ( )

द) 1988 में उच्चतम न्यायालय ने हिरासत में बलात्कार के मामले में सुमन रानी मुकदमें का फैसला सुनाते समय पीड़िता के साथ न्याय किया। ( )

iii) उन कारणों का वर्णन कीजिये जिन्होंने भारतीय महिलाओं में अपने अधिकारों के लिये चेतना जगाई।

.....

.....

.....

.....

.....

9.4 आंदोलन : प्रगति और परिपक्वता

महिला हितों के लिये आंदोलन के दौरान नारीवादियों को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा और उन्हें अनेक प्रकार के अनुभव हुए, बलात्कार और दहेज उत्पीड़ी मामलों में आंदोलनकारियों को सशक्त कानून बनवाने में सफलता तो मिली, परंन्तु वह आर-पार की कामयाबी नहीं थीं। इसलिये, उन्होंने यह ज़रूरी समझा कि वे अपने विरोध प्रकट करने के तरीकों और नीतियों पर फिर से विचार करें। आंदोलनकारियों को ऐसा लगने लगा कि कानून बना देना ही काफी नहीं है, सबसे बड़ी समस्या कानून को ठीक से लागू करने और उसके सदुपयोग की है। सरकार भी यह बात समझ गई कि कानून का दुरूपयोग होता है, इसलिये वह इस नतीजे पर पहुंचने लगी कि कानून बनाने में जल्दबाजी न की जाये। अतः सरकार ने आंदोलनकारियों के कानून में संशोधन करने की मांग को गंभीरता से लेना बंद कर दिया। अतः कानून में संशोधन कराने के लिये प्रदर्शनों का सहारा लेने की बजाय आंदोलनकारी इस बात पर ज़ोर देने लगे कि सरकारें उन कानूनों को सख्ती से लागू करें जो पहले से ही मौजूद हैं। 1980 के दशक में महिला सहायता केन्द्रों की स्थापना करने का सिलसिला शुरू हो गया। विभिन्न नगरों में महिलाओं को कानूनी सहायता देने के परामर्श देने, उनके स्वास्थ्य की रक्षा करने तथा उन्हें रोज़गार प्रदान करने जैसी सेवाएं प्रदान करने का सिलसिला महिला कल्याण केन्द्रों पर शुरू हो गया। महिला सशक्तीकरण के लिये साहित्य लोक कथायें तथा ऐतिहासिक घटनाओं के विवरणों के माध्यम से प्रयास किये जाने लगे। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिये पारम्परिक संसाधनों को उतना उपयोगी नहीं माना गया, बल्कि कई अर्थों में उन्हें महिलाओं की तकलीफ बढ़ाने के लिये जिम्मेदार माना गया। स्त्रियों के अधिकारों की आवाज़ उठाने के लिये महिलाओं ने अतीत के इतिहास से उदाहरण खोजना उतना जरूरी नहीं माना। इसके स्थान पर उन्होंने उन उदाहरणों को ज़्यादा जरूरी माना जिसमें कुछ दिन पहले ही महिलाओं ने अपनी शक्तियों का प्रदर्शन

किया था। 1970 के दशक में चिपकों आंदोलन में महिलाओं ने आगे बढ़कर योगदान दिया था। जंगल बचाने के लिये पेड़ों को काटने से रोकने के लिये महिलायें पेड़ों से चिपक जाती थीं जिन्हें काटने के लिये लोग आते थे। उत्तर भारत के पहाड़ी इलाकों में यह आंदोलन बहुत कारगर साबित हुआ।

1980 के दशक में नारीवादी आंदोलन ने अपने स्वरूप में अनेक परिवर्तन किये। विभिन्न दायित्वों को निभाने के लिये आंदोलनकारी अनेक क्षेत्रों में काम करने लगे। कुछ ने महिलाओं के अधिकारों के पक्ष में साहित्य लिखना शुरू कर दिया, महिला उत्पीड़न तथा महिलाओं के शोषण पर अनेक लेख लिखे जाने लगे। कवितायें, कहानियां तथा उपन्यास लिखे जाने लगे। पिछड़ी बस्तियों में काम करनी वाली समाज सेवी महिलाओं ने कैसेट और सीडी आदि बनानी आरंभ कर दीं। महिलाओं को रोज़गार देने वाली योजनाओं पर काम करना शुरू कर दिया। कुछ नारीवादी महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी शिक्षा प्रदान करने लगे और कुछ ने महिलाओं के हितों के संरक्षण के लिये व्यापार संघों का गठन कर लिया। स्त्रियों ने अपनी प्राथमिकता तीन विषयों में दिखाई, ये थे पत्रकारिता, शिक्षा तथा चिकित्सा। नारीवादी आंदोलन शुरू होने के साथ ही ज़्यादातर अंग्रेज़ी अखबारों ने लिखने की प्रतिभा रखने वाली महिला पत्रकारों से कहा कि वे महिलाओं की समस्याओं पर विशेष लेख लिखें और देखते ही देखते सभी समाचार पत्र महिला पत्रकारों को प्राथमिकता देने लगे। महिला अध्ययन केन्द्रों की शुरुआत अस्सी में ही हो गई थी। दिल्ली में सैन्टर फॉर विमिन्स डेवलपेमैन्ट स्टडीज़ (CWDS) की स्थापना हुई। एस.एन. दामोदर ठाकरे विमिन्स यूनिवर्सिटी, मुम्बई ने महिला शोधकर्ताओं को आमंत्रित किया और उनके लिये बजट निकाला। विश्वविद्यालय के अतंर्गत महिला अनुसंसाधन इकाई अलग से स्थापित की गई। महिला विकास अध्ययन केन्द्र दिल्ली तथा एस. एन. दामोदर ठाकरे महिला विश्वविद्यालय, मुम्बई ने मिलकर महिला अध्ययन पर वार्षिक महासभा का आयोजन करने की योजना बनाई। महिला अध्ययन में अध्ययनकर्ताओं की रुचि बढ़ने लगी और यूनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन ने महिलाओं का अध्ययन (Womens Studies) नामक पाठयक्रम ही कॉलेज स्तर पर आरम्भ कर दिया।

उसी समय शिवसेना ने महिला शाखा को अपने संगठन में शामिल किया जिसका उद्देश्य था मुस्लिम विरोधी प्रचार करना। ये महिलायें मुसलमानों की बढ़ती आबादी का अध्ययन करती थीं और इस बात का प्रचार करती थीं कि मुसलमान इस देश में तेजी से अपनी आबादी बढ़ा रहे है। अगर इनकी अबादी ऐसे ही बढ़ती रही तो एक दिन हिन्दू अपने ही देश में हाशिये पर आ जायेंगे।

1982-1983 के बीच दिल्ली, राजस्थान और पश्चिम बंगाल में महिलाओं के कुछ ऐसे संगठन बन गये जिन्होंने महिला आंदोलनकारियों को चिन्ता में डाल दिया। ये संगठन परम्परावादी महिलाओ के थे, जिन्होंने यह प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि यदि किसी के पति की मृत्यु हो जाये, तो उस स्त्री को अपने पति की चिता के साथ अपने आप को जलाकर भस्म कर देना चाहिये। इन महिलाओं ने जो संगठन बनाया था, उस का नाम रानी सती सर्वसंघ रखा गया। इस संगठन ने देश के विभिन्न भागों में ज़ोरदार प्रदर्शन किये और सरकारों से यह मांग कि स्त्री को सती होने का अधिकार दिया जाये। दिल्ली में उस समय संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई जब नारीवादी आंदोलनकारियों ने सती प्रथा का समर्थन करने वाली महिलाओं के जुलूस को निरस्त करने के उद्देश्य से ज़बरदस्त प्रदर्शन का आयोजन किया। दोनों ओर के प्रदर्शनकारी एक दूसरे से भिड़ गए और जमकर मारपीट हुई। सती प्रथा की समर्थक महिलाओ ने हिन्दू परम्परा को जीवित रखने के लिए कमर कस ली थी और उन्होंने यह साबित करने का प्रयास किया कि सती होना कोई मज़बूरी नहीं है, अपितु यह एक तरह की बहादुरी है। वे अपने आपको वीरांगना मानती थीं और नारा लगाती थीं : "हम भारत की नारी है", फूल नहीं चिंगारी हैं।

1980 में नारीवादी आंदोलन के विरोध में परम्परागत सोच रखने वाले लोग अपने परिवारों में भी नारीवादी सोच रखने वाली महिलाओं का विरोध करने लगे। स्त्रियों का स्वतंत्र व्यक्तित्व तथा उनके स्वतंत्र विचार परिवार तथा समाज के कई लोगों को पच नही रहे थे। जिन स्त्रियों को दहेज के लिए प्रताड़ना दी जा रही थी, अथवा जिन्हें परंपरागत ढंग से विवाह करने के लिए विवश किया जा रहा था, महिला सहायता केंन्द्रों ने उन्हें सहयोग दिया। नारीवादियों पर सामाजिक हमले भी हुये। परिवार, पुलिस स्टेशनों तथा न्यायालयो में भी उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा। यद्यपि जिन अग्रणी महिलाओं पर ऐसे हमले होते थे, उन्होंने मीडिया तथा जनता से सहानुभूति भी प्राप्त होती थी। नारीवादियों महिलाओं की समाज में आलोचना भी होने लगी थी। साम्प्रदायिक सोच वाले तथा आधुनिकता के विरोधी स्त्री को दबाकर रखने की मानसिकता रखने वाले लोग नारीवादी आंदोलन के सख्त विरोधी थे।

9.5 समलैंगिक तथा क्वीयर (Queer) जनों का आंदोलन

जब हम जेंडर-आधारित आंदोलन की बात करते है, तब हमें अन्य प्रकार के जेंडर वाले लोगों की बात भी करनी चाहिए, जो भारतीय समाज का हिस्सा हैं। पुरुष और स्त्री के बीच यौन व्यवहार के अलावा समाज में कुछ अन्य लोग भी होते है, जिनका यौन-व्यवहार अलग तरह का होता है। समलैंगिता शब्द का इस्तेमाल जिन लोगों के लिए होता है, उनमें स्त्री-स्त्री के बीच यौन संबंध बनाने वाले (Lesbian), पुरुष-पुरुष के बीच यौन संबंध बनाने वाले (Gay) दोनों प्रकार के संबंध बनाने वाले भी होते है।

1980 में इन सभी श्रेणियों में आने वाले लोगों को समलैंगिक नाम दिया गया। इन लोगों का यौन व्यवहार सामान्य जनों के यौन व्यवहार से भिन्न होता है। उनके यौन सम्बंधों का स्वरूप तथा उनकी पहचान व यौन व्यवहार बिल्कुल अलग तरह का होता है। समलैंगिक पुरुष दूसरे पुरुषों के साथ यौन-सम्बंध बनाते है। वे विपरीत लिंग, अर्थात स्त्रियों की ओर आकर्षित नहीं होते।

समलैंगिक स्त्रियाँ दूसरी स्त्रियों की ओर आकर्षित होती हैं और उन्हीं के साथ यौन-संबंध बनाती है। पुरुषों की ओर वे तनिक भी आकर्षित नहीं होती। उभय लिंगी (bisexual) व्यक्ति स्त्री की ओर भी आकर्षित होता है और पुरुषों की ओर भी। यह दोनों के साथ यौन संबंध बनाता है।

समलैंगिक तथा विशिष्ट यौन व्यवहार वाले व्यक्ति समाज के साथ घुलमिल नहीं पाते क्योंकि उनके विशिष्ट यौन व्यवहार को सामान्य-जन पसंद नहीं करते। स्त्री-पुरुष के बीच यौन संबंधों को समाज सामान्य मानता हैं, तथा उन्हें मान्यता प्रदान करता हैं। समलैंगिक व्यक्तियों के साथ सामान्य-जन बुरा व्यवहार करते है। वे उनकी उपेक्षा करते हैं तथा उनके साथ हिंसक भी हो जाते हैं। सामान्य-जन भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया में समलैंगिकों तथा विशिष्ट लिंगी व्यक्तियों का मज़ाक उड़ाते हैं और उनसे दूरी बनाकर रखते हैं। कुछ देशों में इन्हें सामान्य अधिकारों का उपभोग भी नहीं करने दिया जाता। यही कारण है कि समलैंगिक अपनी लैंगिकता छिपाते हैं। अपने यौन व्यवहार के बारे में किसी को इसी डर से नहीं बताते कि उन्हें उसके द्वारा अपमानित होना पड़ेगा। कभी-कभी नौकरी देने वाली कम्पनियाँ भी उनके साथ दुर्व्यवहार करती हैं। यदि उनके यौन-व्यवहार का पता लग जाये तो उनकी नौकरी भी जा सकती है।

स्कूलों तथा कॉलेजों में उनके साथ रैगिंग की जाती है और सबके सामने उनकी फजीहत की जाती है। इससे तंग आकर कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले

समलैंगिक छात्र मानसिक रोग के शिकार हो जाते है। वे तनाव के साथ जीने पर विवश होते हैं। उन्हें अपनी पढ़ाई छोडनी पड़ जाती है। उन्हें अपने पड़ोस में रखने के लिए भी कोई तैयार नहीं होता है।

लगातार अपमान झेलते-झेलते व तंग आ जाते हैं, उनके आत्मविश्वास का स्तर गिर जाता है। वे अपने परिवारों तथा मित्रो से भी कट जाते हैं। सामान्य बच्चों के माता-पिता अपने बच्चों को समलैंगिक यौन व्यवहार वाले बच्चों के साथ खेलने भी नही देते। उन्हें सामान्य बच्चों के साथ स्कूलों व कॉलेजो में पढ़ने भी नहीं दिया जाता। यदि कोई समलैंगिक बच्चा अपने यौन व्यवहार के बारे में अपने किसी मित्र को बता देता है तो वह बाकी सब बच्चों तक इस बात को पहुँचा देता है। तब उसे कोई पंसद नहीं करता और वह अकेलेपन का शिकार हो जाता है। उनके अपने माता-पिता भी कई बार उनके साथ न्याय नहीं कर पाते। कुछ परिवार तो उन्हें अपने साथ रखना भी सहन नहीं कर पाते और उन्हें घर छोड़ना पड़ जाता है। उन्हें या तो किसी किशोर हिरासत में रखा जाता है या फिर वे बेघर होकर मारे-मारे फिरते है। इसका उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, उनका स्वास्थ्य गिर जाता है। वे अपने आपको धरती पर बोझ समझने लगते हैं और निराश हो जाते है।

एक अध्ययन के अनुसार अमेरिका में 30% समलैंगिकों को उनके परिवार वालों ने छोड़ दिया। पूरी दुनिया में जितने लोग बेघरवार हैं, उनमें से 40% समलैंगिक हैं। 'गे, लेस्बियन एंड स्ट्रेट एजुकेशन नैटवर्क (GLSEN) नामक संगठन की रिपोर्ट के अनुसार 10 प्रतिशत समलैंगिक छात्रो में से 9% को अपने ही साथियों से अपमानित होना पड़ता है। नेशनल स्कूल क्लाइमेट सर्वे, 2007 के आंकड़े बताते हैं कि समलैंगिको का केवल समाज में बहिष्कार ही नहीं किया जाता है, अपितु लगभग 31.7% समलैंगिक छात्र अपने आप को इतना असुरक्षित महसूस करते हैं कि अपनी एक कक्षा छोड़ देते हैं और 32.7% सप्ताह में एक दिन स्कूल ही नहीं जाते।

एक सच्चाई यह भी है कि लैस्बियन, गे, उभय लिंगी यौन व्यवहार वाले तथा तीसरे जेंडर के व्यक्ति (हिजड़े) गरीबी और नस्लीय घृणा की मार भी झेलते हैं। वे सामाजिक असमानता और आर्थिक असमानता की पीड़ा झेलने पर भी विवश है, क्योंकि नौकरी देने में भी उनके साथ भेद-भाव किया जाता है। लगातार उपेक्षा, गरीबी और पिछड़ेपन की मार झेलते-झेलते ये लोग असुरक्षा तथा हीनता की ग्रंथियों के शिकार हो जाते हैं। और समाज के बीच सिर उठाकर चलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते तो नशीली दवाओं का, शराब और तम्बाकू का सेवन करने लगते हैं। इससे उनके मन को क्षणिक सुकून तो मिल जाते हैं, परन्तु उनका स्वास्थ्य चौपट हो जाता है और जिंदगी बर्बाद होने लगती है।

बड़ी उम्र के होने पर समलैंगिकों की परेशानियां और भी बढ़ जाती हैं। एक तो वे विवाह करके बच्चे पैदा नहीं कर पाते, और इसीलिए उनके परिवार नहीं बन पाते। पूरी ज़िंदगी उपेक्षित तथा अकेलेपन का अभिशाप झेलने पर विवश समलैंगिक जब वरिष्ठ नागरिक की उम्र में प्रवेश करते हैं, तब उन्हें सरकारों की ओर से दी जाने वाली वे सुविधायें भी नहीं मिल पातीं जो सामान्य नागरिकों को प्राप्त होती हैं। दुनिया के अनेक देशों में समलैंगिक अनेक प्रकार की नागरिक सुविधाओं से वे वंचित रह जाते हैं।

इसके अलावा उन्हें घृणा की मार भी झेलनी पड़ती है। कुछ समाजों में समलैंगिकता एक अपराध मानी जाती है। इसके लिए उन्हें दंडित भी किया जाता हैं, जुर्माने किये जाते हैं, और वे जेलों में ठूंस दिये जाते हैं। इस्लामिक समाजों की आबादी दुनिया में पूरी आबादी का 25 प्रतिशत, अर्थात् 1.8 अरब से अधिक है, और 50 देशों में मुस्लिम (बहुल) आबादी का निवास है। इतनी बड़ी आबादी में कितने लोग ऐसे होंगे जो समलैंगिकता की मार झेलने पर विवश हैं। इस्लाम में समलैंगिकता पाप मानी जाती है, अतः समलैंगिक नैतिक व सामाजिक

अपराधी माने जाते हैं और उनकी जिंदगी नर्क बनकर रह जाती है। पता नहीं कब से कितने लोग समलैंगिक और हिजड़ा होने का अभिशाप झेलते रहे हैं। दुनिया ने इसका संज्ञान बहुत बाद में लिया।

1920 में सबसे पहले सोवियत संघ ने समलैंगिकता को गैर-अपराधिक यौन व्यवहार घोषित किया। यह वह दौर था जब समाज में यौन-नैतिकता का पारंपरिक रूप पालन किया जाता था। परन्तु जब स्टालिन का दौर आया तो उसने फिर से इसे आपराधिक गतिविधि में शामिल कर दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद समलैंगिकों के अनेक समूह सामने आये और उन्होंने अपनी यौन-प्रवृत्ति को सामाजिक मान्यता दिलाने की मांग उठाई। 1945 में कुछ यूरोपीय देशों में समलैंगिक आंदोलन का आरंभ हुआ और 1970 तक जारी रहा। 1970 में 'गे लिब्रेशन मूवमेंट' का आरंभ हुआ जो लगभग 4 वर्षों तक चलता रहा। फिर सभी प्रकार के समलैंगिक आंदोलनकारियों के संगठनों ने संयुक्त रूप से दुनिया भर में अपनी आवाज उठाने का फैसला लिया। इसी दौर में गे लिब्रेशन फ्रंट (GLF) तथा गे एक्टीविस्ट एलाइन्स (GAA) अस्तित्व में आये।

अब तक संघर्ष करने वालों में पुरुष समलैंगिक (GAY) तथा महिला समलैंगिक (Lesbiams) ही चर्चा में थे। 1970 में पहली बार उभलिंगी यौन-व्यवहार वाले सामने आये। न्यूयार्क में 'नेशनल बाइसेक्सुअल लिब्रेशन ग्रुप' नामक संगठन का गठन हुआ। 1979 में स्वीडन पहला देश था जिसने समलैंगिकता को सामाजिक व कानूनी मान्यता प्रदान की।

आधुनिक भारत में 'शकुंतला देवी' नामक महिला पहली भारतीय नागरिक थी जिन्होंने 1977 में भारतीय दंड संहिता की धारा 377 पर, जिसमें समलैंगिकता को अवैध करार दिया गया है, अपना शोध प्रबंध प्रकाशित किया। 1991 में भारत में एड्स भेद-भाव विरोधी आंदोलन आरंभ हुआ जिसने भारतीय संविधान की धारा 377 को हटाने की मांग की। धारा 377 में अनेक लेख लिखे गये और उसे मानवाधिकार विरोधी करार दिया गया। 2001 में 'नाज़ फाउंडेशन' नामक संस्था ने दिल्ली हाई कोर्ट में एक जनरुचि याचिका दायर की जिसमें धारा 377 पर विचार करने तथा उसे हटाने की मांग की गई थी।

2013 में भारत के उच्चतम न्यायालय ने पहली बार हिजड़ों को तीसरे जेंडर के रूप में मान्यता दी। भारत के उच्चतम न्यायालय ने भारत सरकार को निर्देश दिया है कि तीसरे जेंडर (हिजड़ा) की श्रेणी में आने वाले व्यक्तियों को सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़ों के वर्ग में शामिल किया जाय। शीघ्र ही हिजड़ों को 'तीसरे जेंडर' करार देने वाला कानून लाया जाना चाहिए। तीसरे जेंडर के व्यक्तियों को अन्य पिछड़ा वर्ग में शामिल कर लिए जाने से उन्हें शैक्षिक संस्थानों तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण का लाभ मिलेगा। यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्देश हिजड़ों के बारे में ही आया था, परन्तु इससे उम्मीद बंध गई है कि अब मानव-यौन व्यवहार के रहस्यों से अंधेरे कमरों में प्रकाश की किरण पहुंचेगी और भिन्न यौन व्यवहार की प्रवृति वालों को भी अपने जीवन को सहजता से जीने की आज़ादी मिलेगी।

2 फरवरी, 2016 को भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने समलैंगिकता की आपराधिकता पर फिर से विचार किया। अगस्त 2017 में सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वसम्पत्ति से यह घोषणा की कि 'भारतीय संविधान की मौलिक अधिकारों से संबन्धित धारा 21 में नागरिकों की निजता का अधिकार भी सन्निहित है'। माननीय सर्वोच्च न्यायालय की इस घोषणा से समलैंगिकों में यह आशा मज़बूत हो गई है कि अब उनके यौन-व्यवहार को अपराध बताने वाले अनुच्छेद 377 को शीघ्र ही भारतीय संविधान से हटा दिया जायेगा।

जनवरी 2018 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर स्वीकृति दे दी कि संविधान की अनुच्छेद 377 की वैधता के प्रश्न को अक्तूबर, 2018 से पहले न्यायालय की बड़ी बैंच के सामने विचार हेतु रखा जाय। 6 सितम्बर, 2018 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 377 को असंवैधानिक करार दिया और समलैंगिकों के यौन-व्यवहार को उनके निजी जीवन का हिस्सा बताते हुये समलैंगिक यौन सम्बंधों को गैर-आपराधिक घोषित किया।

9.6 आंदोलन की चुनौतियाँ

1985 के आते-आते नारीवादी आंदोलनकारियों के सामने **शाहबानो मुकदमें** की चुनौती आ गई। भारत में मुस्लिम समाज अपने सामाजिक व पारिवारिक मामलों को शरीयत के अनुसार लागू होने वाले निजी नियमों से सुलझाता है। भारत में जो धर्मनिरपेक्ष कानून है, उसके अनुसार हिन्दु या मुसलमान स्त्री तलाक या पति से अलग होने पर गुजारे की रकम नहीं मांग सकती। मुस्लिम पर्सनल लॉ के मुताबिक स्त्री यदि अपने पति से अलग होती है, तो उससे समाज को साक्षी मानकर उसके विवाह के समय दी गई मेहर की रकम मांग सकती है। हिन्दु कानून के अंतर्गत विवाह के समय उसके माता-पिता द्वारा वर पक्ष को दिये गये उपहार अथवा स्त्री धन की मांग कर सकती है। आजादी से पहले भारत में ब्रिटिश हुकूमत ने दंड-प्रक्रिया संहिता का अनुच्छेद 125 जारी किया था। शाहबानों का मामला जब सर्वोच्च न्यायालय के सामने आया, तब स्वतंत्र भारत में यही आपराधिक कानून लागू था।

शाहबानों एक 75 वर्षीया मुस्लिम महिला थी, जिसे उसके पति ने बुढ़ापे में धक्के खाने के लिए छोड़ दिया। शाहबानों ने भारतीय न्यायालय में इस अनुच्छेद 125 के तहत हर्ज़ाने के तौर पर गुजारे के लिए धन राशि की मांग की। उसके पति ने क्रोधित होकर तीन बार तलाक-तलाक-तलाक कहा और पत्नी को तलाक दे दिया।

सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 125 के तहत तथा मुस्लिम पर्सनल लॉ के अनुसार यह सही पाया कि शाहबानों को गुज़ारे की रकम उसके पति द्वारा दी जाये। मुसलमानों के पेगंबर मुहम्मद साहब के अनुसार तथा हिन्दुओं के धार्मिक व सामाजिक विधि निर्माता महाराज मनु के अनुसार पारंपरिक न्याय प्रक्रिया के तहत स्त्री को अलग होने पर रकम दिया जाना वाजिब नहीं था।

इस आधार पर मुस्लिम समाज में सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले की कटु आलोचना हुई। मुसलमानों ने तथा उनकी अंधी तरफदारी करने वाले राजनैतिक दलों ने इसे शरीयत के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का दखल करार दिया। उस समय माननीय न्यायालय ने भारत सरकार को हिदायत दी कि वे स्त्रियों के अधिकारों को लेकर सचेत हो जायें और समान नागरिक संहिता लागू करें।

सर्वोच्च न्यायालय के इस फैसले की उदारवादियों, धर्मनिरपेक्षता के पहरोकारों तथा मुस्लिम पर्सनल लॉ के हिमायतियों ने जमकर मजम्मत की। उलेमाओं ने इस फैसले के खिलाफ यह आरोप लगाते हुए फतवा जारी कर दिया कि फैसला इस्लाम-विरोधी है। फतवा को मुस्लिम समाज का तथा उसके समर्थन में राजनीति करने वाले राजनायिकों का समर्थ मिला। मुसलमानों ने यहां तक कह डाला कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय के इस तरह शरीयत के मामलों में दखल देने से भारत में इस्लाम खतरे में है। मुम्बई में एक लाख लोगों ने इस फैसले के विरुद्ध प्रदर्शन किया। भोपाल में भी लगभग इतने ही लोग फैसले के विरुद्ध सड़कों पर उतरे। जिन लोगों ने इस फैसले का समर्थन किया था, उन पर पत्थर फैंके गये, उन्हें सरेआम पीटा गया तथा जान से मारने की धमकियां तक दी गई। नारीवादी आंदोलनकारियों ने महिला अधिकार की बात बताते हुये जब इस फैसले का समर्थन किया,

तो उन पर कट्टर पंथियों ने हमले किये। नारीवादी आंदोलनकारी कहीं-कहीं दोफाड़ हो गये। पारंपरिकता के दबावों को चीर पाने में असमर्थ स्त्रियाँ पारंपरिक सोच के आगे झुकती नज़र आई।

सितम्बर, 1987 में राजस्थान के एक गांव 'देवराला' में एक स्त्री सती हो गई। इसका समर्थन तथा विरोध करने वालों के बीच गरमागरम बहस छिड़ गई। कुछ लोग 'सती प्रथा' के समर्थन में अचानक इतने उत्साह के साथ आगे आये कि उन्होंने मीडिया में लेखों के अम्बार लगा दिये। टेलीविज़न चैनल पर ज़ोरदार बहस हुई। सती समर्थन वालों ने नारीवादी आंदोलनकारियों की सोच तथा उनके इरादों पर कटु प्रहार किये और उन्हें 'आधुनिकता' का दलाल तक कह डाला। नारीवादियों को पश्चिम के पिट्ठू कहा गया। उन्हें उपनिवेशवादी कहा गया, उन्हें संस्कृति विरोधी तथा पूंजीवाद की समर्थक बताया गया।

'रूप कुंवर' नामक राजपूत समाज की उस स्त्री को, जो सती हुई थी, इतना महिमा मंडित किया गया कि पूरे राजपूत समाज ने उसे राजपूत मर्यादा का प्रतीक करार दे दिया। कुंवर राजपूत अपने समाज में अग्रणी माने जाते थे, उनका राजनीति में भी दखल था। देवराला गांव में अच्छे पढ़ें-लिखे लोग निवास करते थे, फिर भी उन्होंने रूपकुंवर के सती होने की घटना की सराहना की।

नारीवादियों के आधुनिकतावादी नारी-अधिकारों के प्रति, जागरूकतावादी विचारों को अपने ही देश में, अपने ही समाज में भारी विरोध का सामना करना पड़ा। नारीवादियों ने समाज की मुख्यधारा में बने रहने के तथा 'सती' को महिमा मंडित करने वाले स्त्री-पुरुषों के कोपभाजन होने से बचने के लिए 'सती' के विचार को आधुनिक रंग में रंग कर व्याख्या करनी शुरू कर दी और उसे 'ऐतिहासिक गौरव' का नाम दे डाला।

सती के समर्थन में प्रदर्शन करने के लिए जो महिलायें मैदान में आई थीं उनकी गतिविधियों का विश्लेषण करने पर पता लगता है कि वे ज्यादातर सती की पूजा की समर्थक थी, स्त्री के सती हो जाने की परम्परा की नहीं। विधवाओं के प्रति उनके दिलों में आक्रोश नहीं था, बल्कि वे उनके प्रति सहयोग व सहूकार की भावना रखती थीं तथा उनकी पीड़ा के प्रति पूरी सहानुभूति रखती थीं।

इस प्रकार ध्यान से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि परम्परा और प्रगतिशीलता के बीच टकराव की जो स्थिति समाज में प्रायः बनी रहती है, वैसी ही स्थिति नारीवादी आंदोलनकारियों तथा परंपरावादियों के बीच उत्पन्न हुई। परिणामतः आंदोलन को भारी क्षति पहुंची।

बोध प्रश्न 2

नोटः 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) रिक्त स्थान भरिये

अ) अतीत में हुए नीति सुधार आंदोलनों ने नारीवादियों को ..... प्रेरणा दी कि वे सामाजिक बदलाव के लिए ..... आंदोलन में उतरें।

ब) अतीत में महिलाओं के आंदोलन का एक उदाहरण है ..... जंगलों के कटान के विरुद्ध आंदोलन।

स) 1980 के दशक में महिलावादियों के खिलाफ परंपरावादियों ने ..... .आंदोलन किये।

द) 1987 में राजस्थान के गांव ..... में रूप कुंवर नामक एक युवा विधवा के परिवार वालों ने उस पर सती होने का दबाव डाला। इससे भारत के बहु-सांस्कृतिक तथा बहु-धर्मी समाज में जबरदस्त बहस छिड़ गई।

ii) भारत में नारीवादी आंदोलन के सामने कड़ी चुनौतियां क्यों आईं?

.....

.....

.....

.....

.....

9.7 सारांश

समकालीन भारतीय महिला आंदोलन तथा समलैंगिक व विशिष्ट यौन व्यवहार वाले लोगों का आन्दोलन इस दौर में आते-आते जटिल हो गया है और आज शायद यही एक ऐसा आंदोलन है जो हमारे समय के महत्वपूर्ण मुद्दों जैसे कार्य की प्रकृति तथा कार्य की अवधि, वेतनमान, पर्यावरण, परिस्थिति की, नागरिक अधिकार, यौन व्यवहार, हिंसा, प्रतिनिधित्व, जाति, वर्ग, आधारभूत संसाधन, उपभोक्ता अधिकार, स्वास्थ्य धर्म, समुदाय तथा व्यक्तिगत व सामाजिक संबंधों को प्राथमिकता के साथ उठा रहा है। इस इकाई में हमने यौन-व्यवहार एवं जेंडर सम्बंधी विभिन्न सामाजशास्त्रीय पहलुओं की व्याख्या की। हमने भारत में स्त्रियों की भूमिकाओं, उनके स्तरों व स्थितियों तथा पारस्परिक स्तरों पर प्रकाश डाला। समाज में आवश्यक परिवर्तन लाने के लिये जो आर-पार के आंदोलन भारत में, खासकर नगरीय क्षेत्रों में हो रहे हैं, उनमें महिलाओं की असाधारण भागेदारी है। पश्चिमी देशो में जो महिला मुक्ति आंदोलन तेजी से उठा और फैला उसने कुछ भारतीय महिलाओं पर अपना प्रभाव डाला है और उन्होंने महिलाओं की समानता और न्याय के लिये संघर्ष किया है। आज भारत में पढ़ी-लिखी तथा उच्चस्तरीय महिलायें स्त्रियों के शोषण के विरुद्ध, उनके इस्तेमाल के विरुद्ध तथा उनको उपभोग की वस्तु मानने की पारम्परिक धारणा के विरुद्ध ज़बरदस्त आवाज़ उठा रही हैं। साथ ही हमने भारत में समलैंगिक तथा विशिष्ट यौन व्यवहार वाले लोगों की अपने अधिकारों के प्रति चेतना और संघर्ष की बात उठाई। कुल मिलाकर जेंडर आधारित सभी प्रकार के आंदोलनों पर इस इकाई में समग्रता और गहनता के साथ विचार किया गया।

9.8 संदर्भ

'विमिन्स स्टडीज़ इन इण्डिया' : पैंग्विन बुक्स, दिल्ली - एम.ई.जॉन, 2008

'द कन्टैम्परेरी विमिन्स मूवमैन्ट एण्ड विमिन्स एजूकेशन इन इण्डिया' : इंटेरनेशलन रिव्यू ऑफ एजूकेशन, मार्च, वॉल्यूम 44, इशू 2-3, पेज. 155-175।

'फ्रॉम चिपको टू सती : द कन्टैम्परेरी इण्डियन विमिन्स मूवमैन्ट इन द चेलैंज ऑफ लोकल फैमीनिज्म : विमिन्स मूवमैन्ट्स इन ग्लोबल पर्सपैक्टिव एडिटिंड बाई अमृता वास, विद दि असिस्टैंस ऑफ सी एलिजाबेथ मैकग्रोरी, बोल्डर कोलोराडो, वैस्ट व्यू प्रैस, 1995, राधा कुमार 1995।

'फील्डस ऑफ प्रोटैस्ट : विमिन्स मूवमैन्ट्स इन इण्डिया, मिनेसोटा। प्रैस, लन्दन – राका रे, 1999।

एनेलिसिस ऑफ एल. जी. बी. टी. राइट्स इन इण्डिया। इंटरनेशनल जर्नल फॉर इमर्जिंग रिसर्च एण्ड डिवलापमैंट वॉल्यूम. 1 इश्यू 2 : अवेलेवल ऑन लाइन एट www.ijernd.com।

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) स्त्री और पुरुष के बीच शारीरिक संबंधों को यौन संबंध कहा जाता है, जबकि जेंडर व्यक्ति की लैंगिक विशिष्टता है जिसमें उसके पूरे व्यक्तित्व के लक्षण, व्यवहार, भावनायें, मूल्य, दृष्टिकोण तथा समाज की दृष्टि में स्त्री और पुरुष के रूप में अलग-अलग पहचान सम्मिलित हैं।

ii) अ) गलत

ब) सही

स) सही

द) गलत

iii) भारत के विभिन्न भागों में जो नारीवादी आंदोलन हुए हैं, उनके पीछे सामाजिक कारण हैं, जिनमें शोषक दहेज प्रताड़ना एवं हत्या तथा बलात्कार आदि प्रमुख हैं।

बोध प्रश्न 2

i) अ) दूर से, तुरंत

ब) चिपको

स) विरोधी

द) देवराला

ii) भारत में नारीवादी आंदोलन को कड़ी चुनौती मिली, क्योंकि भारत में हिन्दु मुसलमान आदि विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं तथा वे पारम्परिक रूप से धार्मिक कानूनों से निर्देषित होते हैं। अनेक श्रेणियों की महिलाओं के हितों की रक्षा करने के लिये भारत में अनेक कानून बनाये गये। धार्मिक संस्थाओं को इन कानूनों में कोई रुचि नहीं हैं। नारीवादीयों ने समाज में मौजूद विभिन्न पारम्परिक मान्यताओं, जैसे- तीन तलाक, सती प्रथा आदि के खिलाफ अपना विरोध प्रकट किया, बड़े-बड़े आंदोलन किये। परम्परावादी इन आंदोलनों से चिढ़ गये और 1980 के दशक में वे नारी विरोधी आंदोलनों के खिलाफ सड़कों पर उतर आये।

इकाई 10 जनजातीय एवं नृजातिय आंदोलन*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 जनजातीय आंदोलन

10.3 जनजातीय आंदोलनों की प्रकृति

10.4 जनजातीय आंदोलनों के कारण

10.5 जनजातीय आंदोलनों के विभिन्न चरण

- 10.5.1 तमार विद्रोह (1789-1832)
- 10.5.2 खेरवार आंदोलन (1833)
- 10.5.3 सन्थाल विद्रोह (1855)
- 10.5.4 बोक्ता आंदोलन (1858)
- 10.5.5 बिरसा की क्रांति (1895-1901)
- 10.5.6 मिदनापुर आंदोलन (1918-1924)

10.6 जनजातीय आंदोलन की प्रमुख विशेषतायें

10.7 नृजातिय आंदोलन

10.8 नृजातिय आंदोलनों का उदय

10.9 नृजातिय आंदोलन के प्रमुख कारण

10.10 नृजातिय भावना का उद्‌गम

10.11 नृजातिय आंदोलनों के प्रकार

- 10.11.1 नृजातिय बहुलता आंदोलन
- 10.11.2 नृजातिय न्यूवता आंदोलन
- 10.11.3 नृजातिय बहुलता एवं न्यूवता आंदोलन

10.12 उपसंहार

10.13 संदर्भ

10.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पढ़ेंगे :

- सामाजिक आंदोलनों के दो प्रमुख स्वरूप भारत में जनजातीय एवं नृजातिय आंदोलन;
- जनजातीय एवं नृजातिय आंदोलनों के कारण तथा उनके प्रकारों की व्याख्या;
- जनजातीय एवं नृजातिय आंदोलनों के उदयः विस्तृत वर्णन;
- जनजातीय आंदोलनों के विभिन्न चरण तथा उनकी विशेषताओं का वर्णन;
- नृजातिय आंदोलनों के प्रकार एवं स्वरूप।

*डॉ एजाज अहमद गिलानी, जामिया मिलिया इस्लामिया, अनु. एम.पी.कंवल

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम दो प्रकार के सामाजिक आंदोलनों पर प्रकाश डालेंगे, पहला है जनजातीय आंदोलन तथा दूसरा नृजातिय आंदोलन। इस इकाई में दो अनुभाग होंगे पहले अनुभाग में भारत में जनजातीय आंदोलनों के बारे में बताया जायेगा, इस अनुभाग में जनजातीय आंदोलनों की प्रकृति का विश्लेषण किया जायेगा और यह बताया जायेगा कि ऐसे कौन-कौन से कारण थे जिन्होंने जनजातीय आंदोलनों को जन्म दिया। इसी अनुभाग में जनजातीय आंदोलनों के विभिन्न चरणों का विवरण प्रस्तुत किया जायेगा तथा जनजातीय आंदोलनों की विशेषताओं के बारे में बताया जायेगा।

इस इकाई के दूसरे अनुभाग में भारत में नृजातिय आंदोलनों के बारे में बताया जायेगा। इसी अनुभाग में उन परिस्थितियों तथा कारणों के बारे में बताया जायेगा जिन्होंने भारत में नृजातिय आंदोलनों को जन्म दिया। इसी में उन समस्याओं का भी उल्लेख किया जायेगा जो नृजातिय आंदोलनों के तीन प्रमुख स्वरूपों पर विचार किया जायेगा जो नृजातिय समूहों की सामाजिक संरचना का आधार हैं। इस इकाई में यह पूरा प्रयास रहेगा कि आप इन दो प्रकार के सामाजिक आंदोलनों के बीच अंतर को अच्छी तरह समझ सकें।

10.2 जनजातीय आंदोलन

पिछले 2-3 दशकों से जनजातियों (आदिवासियों) के मानवाधिकारों के हनन की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। भारतीय संविधान की धारा 342 में जनजातियों को अनुसूचित जन-जाति का दर्जा दिया गया है। धारा 366 (25) में जनजातियों की परिभाषा इस प्रकार की गई है - वे वन्य जातियाँ अथवा जन-समुदाय जिन्हें संविधान के धारा 342 में अनुसूचित जातियाँ कहा गया है, जन-जातियाँ कहलाती हैं। जन जातियों की अनेक श्रेणीयाँ हैं - सीमांत जन जातियाँ जो उत्तरी-पूर्वी भारत के राज्यों, जैसे अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, असम, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा और नागालैंड में निवास करती हैं। इन प्रांतों में रहने वाली जनजातियों का 11 प्रतिशत है। इसके अलावा कुछ अन्य जनजातियाँ भी है जो देश के विभिन्न भूभागों में निवास करती हैं। मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, उड़ीसा, बिहार, लक्ष्यद्वीप, दादरा तथा नगर हवेली में बसी जनजातियाँ कुल जनजातीय संख्या की 89 प्रतिशत हैं।

ये दोनों प्रकार की जनजातियां भारत के मुख्यधारा के समाजों से पूरी तरह अलग हैं और बिल्कुल अलग वातावरण में रहती हैं। ये लोग जमीन और जंगल के संसाधनों से ही अपना गुजारा करते हैं (पॉल 1985)। भारत की अन्य बस्तियों की तुलना में जनजातीय बस्तियों की आबादी का घनत्व बहुत कम होता है। देश की मुख्यधारा के लोगों से बिल्कुल अलग होने के कारण इनकी जीवनशैली, परम्परायें, सांस्कृतिक विरासत, खान-पान, धार्मिक मान्यतायें, रीति-रिवाज, मूल्य पहनावा तथा पहचान आदि भिन्न होता है। भारत में अंग्रेजों के आने से पहले जनजातियाँ जंगलों में निवास करती थीं, क्योंकि जंगलों पर इनका एकाधिकार था और अपनी रोज की आवश्यकतायें जैसे भोजन, पशु चराना, पशुपालन, घरों के निर्माण आदि जंगलों से पैदा होने वाले उत्पादन तथा लकड़ी से ही पूरी होती थीं और खेती उनका व्यवसाय था।

अंग्रेजों ने भूमि सुधार नीतियां लागू की जिनके अंतर्गत जनजातियों के भूमि से पारम्परिक अधिकार समाप्त कर दिये गये। सब जमीनों के मालिक जमींदार बना दिये गये और जनजातियों की जमीनों के मालिक ऐसे लोग हो गये जो उनमें से एक नहीं थे यानि आदिवासी नहीं थे। जमींदारी प्रथा लागू होने के बाद जनजातियों के लोग अपनी जमीनों पर

खेती तो करते रहे परन्तु उनके मालिकाना हक खत्म हो गये, अब वे केवल खेतिहर मजदूर बनकर जमींदारों के लिये काम करते थे। धीरे-धीरे जनजातीय लोगों की आर्थिक स्थिति बिगड़ती चली गई और जब जमीनों को बेचने का अधिकार मिला तब जमीदारों ने अपनी जमीनें साहूकारों और व्यापारियों के हाथों बेचनी शुरू कर दी। इससे जनजातियों के लोग गरीबी और पिछड़ेपन की चपेट में आ गये, जिन्दा रहने के लिये उन्हें कर्ज लेने पड़ते थे, कर्जदारों के हाथों उनका सब कुछ बिक गया, कर्ज न चुका पाने के कारण उन्हें अपने बच्चे भी बेचने पड़ जाते थे।

समय बीतने के साथ जब चीजों की कीमतें बढ़ने लगी तो उनका जीना मुश्किल हो गया, उनकी कोई सुनने वाला नहीं था। जब शोषण बर्दाश्त से बाहर हो गया तब जनजातियों ने अपने सरदारों तथा मुखियाओं के नेतृत्व में हथियार उठा लिये और सता के खिलाफ विद्रोह कर दिया। यहीं से भारत में जनजातिय आंदोलनों की शुरुआत हुई, इनका नेतृत्व इनकी जाति के प्रमुखों के हाथों में रहा। जनजातियों के आंदोलन विभिन्न चरणों से गुजरे। इनका वर्णन नीचे किया जायेगा।

सोचिये और करिये 1

आपकी भाषा में जनजाति का पर्याय क्या है? क्या तुम किसी जन-जातीय नेता को जानते हो जो आगे चलकर भारत का राजनैतिक नेता बना। उसके बारे में और जानकारी एकत्रित करो और उसके आधार पर एक निबंध लिखों।

10.3 जनजातीय आंदोलन की प्रकृति

भारत में हुए जन-जातीय आंदोलनों को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक, हिसंक आंदोलन; दो अहिंसक आंदोलन। अहिंसक आंदोलनों में हिंसा नहीं होती थी। जनजातियों के लोग अपने शोषकों के खिलाफ विरोध प्रकट करते थे और फिर उनके साथ अपनी शर्तों पर समझौता करने को तैयार हो जाते थे जब हिंसक आंदालेनों में शोषकों के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह होता था और उनके आधिपत्य को उखाड़ फेंका जाता था। अहिंसक आंदोलन का सबसे सटीक उदाहरण ताना भगत आंदोलन है तथा हिंसक आंदोलन का सटीक उदाहरण मुरिया आंदोलन है।

ताना भगत आंदोलन पूरी तरह अहिंसक आंदोलन था। इस आंदोलन के द्वारा जनजातीय समुदायों का संरचनात्मक परिवर्तन हुआ। संरचनात्मक परिवर्तन का एक उदाहरण एम. एन. श्री निवास के शब्दों में सांस्कृतिकरण था। दूसरी ओर मुरिया (मौर्या) आंदोलन पूरी तरह हिंसक आंदोलन था इसका उद्देश्य जनजातीय जीवनशैली में बदलाव लाना तथा जंगल और जमीन संबंधी जनजाति लोगों के अधिकारों को दुरूस्त करना था।

10.4 जनजातीय आंदोलनों के कारण

जनजातीय आंदोलनों के मूल में विभिन्न समस्यायें रही हैं जो उनके जीवनयापन तथा सामाजिक संरचना से सरोकार रखती हैं। अधिकतर आंदोलन अंग्रेजों द्वारा जनजातीय जनों के अधिकारों के हनन का विरोध करना था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जनजातीय आंदोलन ब्रिटिश हुकूमत की उन ज्यादतियों के खिलाफ खड़े हुए जिन्होंने उनका जीना मुश्किल कर दिया था। जंगल और जमीनों से उनके अधिकार छीन लिये गये थे, उन पर टैक्स बढ़ा दिये गये तथा उन्हें अपनी जमीनों से हटाकर दूसरी जगह बसाने का प्रयास किया गया। उन्हें सताया गया तथा जनजातीय क्षेत्रों के मालिकाना हक ऐसे लोगों को दे

दिये गये जो उन से एक नहीं थे। इनमें से सबसे बड़ा कारण यह था कि ब्रिटिश हुकूमत ने कानून बनाकर जंगलों को काटने की इजाजत दे दी और लकड़ी के व्यापारियों तथा ठेकेदारों ने कौड़ियों के मोल जंगल खरीद लिये और पैसा बनाने के लिये उन्हें काटना शुरू कर दिया इससे जनजातीय लोगों के रहन-सहन और संसाधन जंगल के कुछ अधिकारियों के हाथों में चले गये और जन-जातियों की परेशानियां बढ़ गई।

जनजातीय आंदोलनों के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं –

क) खेती की जमीनों पर गैर जनजातीय लोगों का अधिकार हो गया इससे बाहर के लोगों का जंगलों और खेती की जमीनों पर दखल बढ़ गया और जनजातीय लोग अपनी ही जमीनों से बेदखल हो गये, इससे उनका सामाजिक और आर्थिक ढांचा चरमराने लगा।

ख) ब्रिटिश शासनकाल के दौरान भारत में ईसाई मिशनरीज आ गये थे और उन्होंने जनजातियों के बीच धर्म प्रचार का काम शुरू कर दिया था। जब ब्रिटिश हुकूमत ने जनजातियों के अधिकार छीने तो ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों का साथ नहीं दिया, वे भारत में उपनिवेशवाद के समर्थक थे।

ग) जंगलात के नये कानून लागू होने से जनजातियों के जंगल और जमीन का मालिकाना हक उनसे छिन गये और उन पर सरकार का हक हो गया, अब जनजातीय लोग जंगलों से लकड़ी नहीं ले सकते थे तथा जंगलों की जमीन पर अपने पशु नहीं चरा सकते थे।

घ) जमींदारी प्रथा लागू होने से जनजातीय लोग अपनी जमीनों पर किरायेदार बनकर रह गये थे और जमीनों के हक उनके पास से चले गये थे जिनका जंगलों से कोइ लेना-देना नहीं था। जमीनों से बेदखल होने के बाद जनजातीय लोगों के पास विद्रोह करने के अलावा कोई चारा नहीं बचा था।

च) लकड़ी के इस्तेमाल पर टैक्स लगा दिया गया था, सूदखोरों और व्यापारियों ने जमीनों पर कब्जे कर लिये थे और वे जंगल के मूल निवासियों का अनेक प्रकार से शोषण करने लगे थे।

छ) पूरा जनजातीय समाज नष्ट होने के कगार पर पहुंच गया था। अपनी ही जमीनों से उखड़े और बाहर के लोगों के द्वारा सताये जा रहे आदिवासी जन और अधिक जुल्म बर्दाश्त न कर सके तब उन्होंने विद्रोह का रास्ता अपनाया।

10.5 जनजातीय आंदोलनों के विभिन्न चरण

कालावधि के आधार पर जनजातीय आंदोलनों को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है।

1) प्रथम चरण (1789-1860)

2) द्वितीय चरण (1860-1920)

3) तृतीय चरण (1920-1947)

इन चरणों के दौरान भारत में जो जनजातीय आंदोलन हुए उनका विवरण इस प्रकार हैः

10.5.1 तमार विद्रोह (1789-1832)

भोलानाथ सहाय के नेतृत्व में तमार जनजातीय समुदायों ने ब्रिटिश हुकूमत के अत्याचारों के खिलाफ 1789 में विद्रोह किया जो 1832 तक चला। यद्यपि यह आंदोलन तमार जनजातियों आरम्भ किया था परन्तु शीघ्र ही इसमें मिदनापुर, कोयलपुर, घाघा, चटशिला, जालदा तथा सिल्ली के अन्य जन जातीय समुदाय शामिल हो गये। यह आंदोलन अंग्रेजों की ब्लेमिष एलाइन सिस्टम के खिलाफ था। अंग्रेजों ने भूमि सुधार कानून लागू करते हुए किसानों से उनकी जमीनों के मालिकाना हक छीन लिये थे जिनसे वे अपनी ही जमीनों से बेदखल हो गये। तमार जनजातीय समुदायों के लोग तथा अन्य अनेक समुदायों के लोग यह जुल्म बर्दाश्त न कर सके और 1789 में उन्होंने अंग्रेजी शासन के खिलाफ विद्रोह कर दिया। 1789 से लेकर 1832 तक सात बार यह आंदोलन ठप हुआ और फिर से आरंभ हुआ। ओरांव, मुंडा, ह्रोस, कोल आदि आदिवासी समुदाय तमार विद्रोह में अपने नेता गंगा सिंह के नेतृत्व में शामिल हुए थे। नई व्यवस्था के अनुसार सरकार ने आदिवासी गांवों के मुखिया जमींदारों की ओर से तैनात करवा दिये थे जिन्हें दिकू कहा जाता था। विद्रोह के दौरान आदिवासियों ने इन सबकी हत्या कर डाली, इनके घर जला दिये गये और इनके सामान पर कब्जा कर लिया गया। 1832-1833 में अंग्रेजों ने तमार विद्रोह को दबा दिया। 'हो' जाति के आदिवासियों की सम्पत्ति पर अंग्रेजों ने कब्जा कर लिया और अपने अधिकार में लेने के बाद उसे 'हो' जाति के मुखिया को सौंप दिया। ब्रिटिश हुकूमत द्वारा बनाये गये कानून के अनुसार अब ये मुखिया इस जागीर का प्रशासक बन गया था।

10.5.2 खरवार आंदोलन (1833)

संथाल जाति के आदिवासियों को ही पहले खरवार कहा जाता था। अंग्रेजों ने इनकी सारी जमीनों पर कब्जा कर लिया था। 1833 में भागीरथ माझी नामक आदिवासी नेता ने अपने समुदाय के लोगों को विश्वास दिलाया कि वे अंग्रेजों से लड़कर उन्हें उनकी जमीनों पर फिर से कब्जा दिलवा सकते हैं लेकिन उन्होंने इसके लिये एक शर्त रखी कि आदिवासियों को हिन्दुओं के इष्ट देव भगवान राम की पूजा करना पड़ेगी। सभी आदिवासी बाबा जी नाम से विख्यात भागीरथ मांझी के साथ कंधा से कंधा मिलाकर खड़े हो गये और 1833 में अंग्रेजों के खिलाफ खरवार आंदोलन आरंभ हो गया।

10.5.3 संथाल विद्रोह (1855)

संथालों की जमीनों पर जमींदारों ने कब्जा कर लिया था। संथाल आदिवासी जमीनों पर अपना हक वापिस लेना चाहते थे। जमींदारों ने इन जमीनों को सूदखोरों के हाथ बेचना शुरू कर दिया इस पर संथाल आदिवासी भड़क उठे और 1855 में उन्होंने नये मालिकों कि विरुद्ध विद्रोह कर दिया। संथाल आदिवासियों के इस आंदोलन का नेतृत्व दो भाईयों ने सम्भाला जिनके नाम - सिधू और कान्हू थे। इन दोनों नेताओं ने आदिवासियों पर होने वाले जुल्मों को खत्म करने की कसम खाई थी। उन्होंने साफ कह दिया था कि जब तक हम अपनी जमीनें जमीदारों और नये मालिकों से वापस नहीं ले लेते तब तक यह आंदोलन जारी रहेगा। फसलों पर कब्जा करने के लिये सारे जमींदार इकट्ठे हो गये थे। संथाल आदिवासियों ने इनके खिलाफ हथियार उठा लिये और कलकता के गर्वनर के पास पहुंच गये, अपने अधिकारों के लिये याचिका दायर की, लेकिन गवर्नर ने उनकी बात नहीं मानी। संथाल आदिवासियों ने जमीदारों के आदमियों से मुकाबला किया। अंग्रेजों ने जमींदारों का साथ दिया, दो महीने तक चले इस विद्रोह में हजारों संथाल आदिवासी मारे गये, लेकिन इस विद्रोह का ब्रिटिश हुकूमत पर भारी असर पड़ा और सरकार को अपनी नीतियां बदलने को राजी होना पड़ा। आदिवासियों ने अंग्रेजों के कब्जे से बहुत बड़ा भूभाग छीन लिया और

अपने कब्जे में लेने के बाद इसका नाम संथाल परगना रख दिया। सरकार ने बीच का रास्ता निकाला और संथाल परगना का मुखिया ब्रिटिश हुकूमत की देख-रेख में तैनात कर दिया गया।

10.5.4 बोक्ता आंदोलन

बोक्ता आंदोलन छोटा नागपुर के विभिन्न क्षेत्रों तीन बार भड़का और उसमें सम्मिलित हुये आदिवासियों ने जमींदारों के अत्याचारों का जम कर विरोध किया। समाजशास्त्री सिंह (1983) ने बोक्ता आंदोलन के तीन चरणों को - कृषि चरण, पुनरुत्थानवादी तथा राजनैतिक चरण नाम दिये हैं। कृषि चरण तथा पुनरुत्थानवादी चरण में आदिवासी किसानों ने जमींदारों के खिलाफ प्रदर्शन किये। आदिवासी किसानों के मालिकाना हक छीने जा चुके थे। जमीनों के मालिक की हैसियत से जमींदारों ने किसानों पर कर बढ़ा दिये और वे उन्हें तरह-तरह से परेशान करने लगे। जमींदारों और आदिवासी किसानों के बीच अनेक मामलों को लेकर ना इन्साफी की थी और कड़ा विरोध था। आंदोलन के राजनैतिक चरण में आदिवासियों ने यह मांग की थी कि उनके क्षेत्र को देश के बाकी क्षेत्रों से अलग कर दिया जाय और राजनैतिक स्वायत्तता दी जाय।

10.5.5 बिरसा विद्रोह (1895-1901)

बिरसा विद्रोह का नेतृत्व प्रखर आदिवासी लड़ाकू बिरसा मुण्डा ने किया था। भारत के इतिहास में उसे महान स्वाधीनता सेनानी तथा मुण्डा जन जाति का संरक्षक माना जाता है। बिरसा मुण्डा ने छोटा नागपुर में मुण्डा जाति के किसानों पर सामन्ती व्यवस्था लांदने के खिलाफ विद्रोह किया था। यह विद्रोह भी पहले वाले विद्रोहों की तरह आदिवासी किसानों की जमीनों और उनके जीवनों में जमींदारों, व्यापारियों और सरकारी अफसरों के दखलों व अत्याचारों के विरुद्ध था। मुण्डा आदिवासियों में कृषि भूमि के मामले में एक व्यवस्था थी जिसे 'खुंटकारी' व्यवस्था कहा जाता था, इस व्यवस्था के अनुसार जो जमीनें आदिवासियों के पास थी उन पर उन्हीं का हक रहना चाहिये था जबकि अंग्रेजों ने 1874 में जमीन संबंधी नीतियां बदल दीं और आदिवासियों की जमीनों का हक जमींदारों को दे दिया। आदिवासी अपनी ही जमीनों पर किरायेदार बनकर रह गये, यह व्यवस्था आदिवासियों को पसंद नहीं थी, जिन किसानों के पास जो जमीनें थीं उन पर उन्हें कर देने को कहा गया और यह धमकी भी दी गई कि यदि समय पर कर नहीं चुकाया गया तो उनसे वे जमीनें छीन ली जायेंगी।

इसके अलावा अन्य अनेक तरीकों से किसानों का शोषण किया जाने लगा, आदिवासियों को उनकी जमीनों से हटाकर दूसरी जगहों पर बसाया जाने लगा, उनकी जमीनों पर दूसरे लोग कब्जा करने लगे, उन्हें तरह-तरह से सताने लगे, जमींदारों के कर वसूलने की सख्ती से परेशान होकर आदिवासी किसान सूदखोरों से कर्ज लेने पर विवश हुए। सूदखोर कर्ज पर ब्याज की ऊंची दर लगाते थे इस दमन के परिणामस्वरूप जनजातियों ने अपने लिये स्वतंत्र भूभाग की स्थापना करने के लिए बाहरी लोगों को चुनौती दी।

10.5.6 मिदनापुर आंदोलन (1918-1924)

यद्यपि यह आंदोलन 1760 में शुरू हुआ था परन्तु 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इस आंदोलन ने बहुत जोर पकड़ा। यह आंदोलन आदिवासियों की जमीनों पर बाहर के लोगों द्वारा कब्जा किये जाने के विरुद्ध छेड़ा गया था। मिदनापुर आंदोलन का अध्ययन दो चरणों में किया जा सकता है। आंदोलन का पहला चरण महात्मा गांधी के 1921-22 में आरम्भ किये गये

असहयोग आंदोलन के समर्थन में किया गया था, तथा इसका दूसरा चरण तब शुरू हुआ जब गांधी जी को गिरफ्तार किया गया। 1920 तक जनजातियों असहयोग आंदोलन से दूर रहीं। 1921 के आरंभ में यह प्रयास किये गये कि जनजातियाँ को भी आंदोलन में शामिल किया जाय। कांग्रेस के समर्थन से बनी मिदनापुर जमींदारी कम्पन्नी ने आदिवासियों को कम वेतन दिये जाने के विरुद्ध आवाज उठाई इसका आदिवासियों ने खुलकर समर्थन किया और वे स्वयं ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध आंदोलन में उतर आये। गांधी जी ने असहयोग आंदोलन स्थागित कर दिया, उनका यह मानना था कि ब्रिटिश व्यवस्था के अधीन जिम्मेदार अधिकारियों ने आदिवासियों के संघर्ष पर ध्यान नहीं दिया था। संथाल आदिवासियों ने हर तरह के अत्याचार के विरुद्ध आंदोलन को बढ़ावा दिया। 1922 में आदिवासियों ने इस बात पर जोर दिया कि जंगलों पर उनका अधिकार सुरक्षित रखा जाय। इस मांग को लेकर आंदोलन इतना उग्र हो गया कि आंदोलनकारियों ने मिदनापुर जमींदारी कम्पन्नी तथा भारतीय जमींदारों के विरुद्ध भी खुला संघर्ष छेड़ दिया।

कुछ अन्य आंदोलन भी आदिवासियों ने किये जिन्हें तीन काल खंडों में अलग-अलग समझा जा सकता है। ये आंदोलन थे – 1) जीतू संथाल आंदोलन मालदा, 2) जनजाति आंदोलन उड़ीसा तथा जनजाति आंदोलन असम। यह सभी आंदोलन ब्रिटिश सरकार द्वारा जमींदारी प्रथा लागू करने के खिलाफ थे। सरकार ने आंदोलनकारियों पर नियंत्रण करने के लिये धारा 144 लगाई जिसके अंतर्गत बड़ी संख्या में आदिवासी गिरफ्तार किये गये, तथा उनकी जमीनें भी छींनी गई।

10.6 आदिवासी आंदोलनों की प्रमुख विशेषतायें

आदिवासियों के सभी आंदोलन शोषण एवं दमन के खिलाफ थे। आदिवासियों का दमन करने वालों में सभी गैर आदिवासी लोग, जमींदार, ठेकेदार, सूदखोर महाजन तथा सरकारी अधिकारी शामिल थे। स्थानीय लोगों ने इन सभी बाहरी तत्वों का विरोध किया, इनमें से अधिकतर आंदोलन आरम्भ में सामाजिक और धार्मिक प्रवृत्ति के लगते थे। अपने अधिकारों की आवाज उठाते-उठाते लगभग सभी आंदोलन आजादी के लिये राष्ट्रीय आंदोलनों में बदल गये। ब्रिटिश शासनकाल में जमीन संबंधी कानून लागू होने के कारण आदिवासियों की जमीनों पर कब्जा होने, उनसे उनका मालिकाना हक छीनने, उनके कम वेतन पर मजदूरी कराने, अधिक कर देने के लिये दवाब डालने, तथा उन पर जमीनों के मालिकाना हक के मामलों में सामन्ती प्रणाली लादने आदि कारणों से आदिवासी बुरी तरह परेशान हो उठे और उनका आक्रोश देश से उपनिवेशीय शासन को उखाड़ फेंकने के संकल्प के साथ प्रकट हुआ। लगभग सभी आंदोलन आदिवासियों के पहले से चले आ रहे हकों को छीनने के विरुद्ध थे। हर आंदोलन का नेतृत्व जनजातीय समुदायों के प्रमुखों ने किया। लगभग सभी आदिवासी आंदोलन अंततः उग्र हुए और हिंसक हो गये जिनका दमन करने के लिये प्रशासन ने नहसंहार किये। उनके घर जला दिये गये और आंदोलनों को कुचल दिया गया। इससे जन जातियां नष्ट होने की कगार पर पहुंच गई, अंततः उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत के सामने घुटने टेक दिया। ब्रिटिश हुकूमत ने उनके पुश्तैनी अधिकारों से उनको वंचित कर दिया, लेकिन उन्हें एक नई व्यवस्था के अंतर्गत लाने तथा उनके हितों का संरक्षण करने के लिये सरकार 1874 में अनुसूचित जन पद का कानून लेकर आई। बाद में जनजातीय क्षेत्रों को गवर्नमैन्ट ऑफ इण्डियन एक्ट 1935 से मुक्त कर दिया गया। ऐसा करने से आदिवासी देश की मुख्यधारा से कट गये, इसके बावजूद सरकार लगातार जनजातीय क्षेत्रों पर नजर रखती रही और जनजातियों के शोषण को छिपाने का प्रयास करती रही।

सोचिये और करिये 2

अपने आस-पास हो रहे निर्माणाधीन कार्य के बीच जाइये और वहां काम कर रहे मजदूरों से पूछिये कि वे कहां के रहने वाले हैं। पता लगाइये कि वे कौन हैं और उनकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि क्या है? अब इस जानकारी के आधार पर एक आलेख तैयार कीजिये तथा अपने अध्ययन केन्द्र के अन्य छात्रों के आलेखों से अपने आलेख का मिलान कीजिये।

बोध प्रश्न 1

नोटः 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) जनजातीय आंदोलन से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

ii) जनजातीय समुदाय झीलों और नदियों के किनारे रहते हैं? सही/गलत

iii) जनजातीय आंदोलनों के दो प्रकारों का वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

iv) संथाल विद्रोह कब हुआ?

.....

.....

.....

10.7 नृजातिय आंदोलन

नृजातिय शब्द के बारे में विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग विचार हैं। 'एथनिक' शब्द एथनोज से निकला है। एथनी सिटी या नृजातियता की परिभाषा देते हुए उर्मिला (1989) ने लिखा है आदि संस्कृति में उदय होने वाले विचित्र समूहों को नृजाति कहा जाता है। यदि किसी समुदाय को नृजातिय समुदाय का नाम देना चाहते हैं तो उसमें छः खास विशेषतायें होनी चाहिये – समुदाय का नाम, सांझी विरासत, सांझी ऐतिहासिक स्मृतियां, सांझी संस्कृति सुनिश्चित क्षेत्र तथा सामूहिक सामंजस्य (स्मिथ, 1993)। नृजातिय समुदायों को प्रायः अल्पसंख्यक कहा जाता है तथा इन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। 1) राष्ट्रीय अल्पसंख्यकः इनमें किसी देश में रहने वाले पारम्परिक निवासी आते हैं, नये धर्म के आगमन अथवा किसी खास धर्म में परिवर्तन करने के बाद जिनकी पहचान बदल जाती है वे भी इसी श्रेणी में आते हैं। 2) दूसरी श्रेणी में वे लोग आते हैं जो अपने देश अथवा राज्य

को छोड़कर किसी दूसरे देश में जाकर बस जाते हैं और वहां अपनी ही पहले से ही मौजूद अपनी नस्ल के लोगों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। 3. तीसरी श्रेणी में शरणार्थी समूह आते हैं वे यद्यपि एक देश से दूसरे देश में स्थानांतरित होने वाले समूहों की तरह ही होते हैं फिर भी दोनों के बीच अंतर यह होता है कि पहले वाले का दूसरे देश में आकर बसना सशर्त समझौता होता है – वे अपने रहने की जगह तथा परिस्थितियां तय करते हैं और शरणार्थियों को शरण देने वाले देश की दया पर कुछ समय तक रहने की अनुमति दी जाती है।

बॉक्स 10.0: नृजातिय समूह

पॉल ब्रॉस (1991) ने नृजातिय समूहों की तीन प्रकार से व्याख्या की है – अ) उद्देश्यपरक जातीय समूह, ब) व्यक्तिपरक जातीय समूह, तथा स) व्यवहार आधारित जाति समूह। जातीय समूह की पहली व्याख्या में उद्देश्यपरक सांकेतिक विशेषतायें मौजूद रहती हैं जो भाषा, क्षेत्र, धर्म तथा पहनावे के आधार पर एक समूह को दूसरे समूह से अलग करती हैं। यह सब लक्षण नृजातिय पहचान माने जाते हैं जिनके आधार पर एक नृजातिय ग्रुप को दूसरे नृजातिय ग्रुप से भिन्न माना जाता है। आर्थिक गतिविधियों आदि के आधार पर नृजातिय समूह एक दूसरे के संपर्क में आते हैं तो वे एक दूसरे में घुल-मिल जाते हैं परन्तु लक्ष्यपरक नृजातिय विशेषताओं के कारण वे अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं। व्यक्तिपरक विशेषताओं वाले जातीय समूहों में जातीय चेतना प्रमुख रूप से विद्यमान रहती है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है जातीय समानता के गर्भ में सांझी पहचान छिपी रहती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि सांझी विरासत का होना उतना महत्व नहीं रखता है जितना कि उसमें विश्वास जमाये रखना। जो है उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण है जो दिखाई पड़ता है, दूसरे शब्दों में जातीय नृजातियता व्यक्तिपरक संरचना है और यह इस बात पर निर्भर करती है कि हम अपने आपको किस रूप में देखते हैं।

तीसरा आयाम व्यवहार संबंधी है, कुछ ठोस तरीके जिन्हें जातीय समूह एक दूसरे के संपर्क में आते समय अपनाते हैं अथवा नहीं अपनाते। किसी जातीय समूह के प्रामाणिक व्यवहार को रिश्तों के निर्वहन, विवाह, मित्रता तथा रीति-रिवाज आदि से पहचाना जा सकता है।

इस प्रकार नृजातीय समूह की पहचान किसी समाज में उसकी भाषा धर्म जातीयता, नृजातिय मूल, संस्कृति आदि से होती है। इन आधारों पर नस्ल विशेष के लोग अपने आप को समाज में अपने चारों ओर रहे लोगों से अलग पाते हैं। इन विभिन्नताओं के आधार पर ही यह पता लगया जा सकता है कि व्यक्तियों का कौन सा समूह एक नस्ल विशेष से संबंध रखता है और उसकी नृजातिय कट्टरता किस कोटि में आती है। एक बड़े समाज के अन्दर कोई नृजातिय समूह अपनी सांझी विरासत साझे ऐतिहासिक अतीत, तथा सांस्कृतिक परम्परायें व व्यवहार जैसे, रिश्तों का निर्वहन, धार्मिक मान्यताओं, भाषा तथा बोलियां आदि के आधार पर अपनी अलग पहचान बनाये रखता है। किसी नृजाति विशेष के लोग समाज के अन्य लोगों के साथ रहते समय तथा व्यवहार करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि उनकी अपनी नृजातिय पहचान कहीं खो न जाय। साथ ही साथ ज्यादातर नृजातिय समूह अपनी उद्देश्यपकरता बाहरी पहचानें, व्यक्तिपरकता तथा आंतरिक चेतना आदि को प्रमुख रूप से व्यवहार में लाते हैं, जिससे दूसरों के साथ रहते समय उनकी नस्ल को अलग से पहचाना जा सके।

नृजातिय अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि यह एक प्रविधि है जिसके माध्यम से एक खास नस्ल अथवा समुदाय के लोग दूसरों के बीच अलग पहचाने जाते हैं। इसके लिये यह जरूरी

नहीं है कि उनके निवास करने का क्षेत्र दूसरों से अलग हो। नृजातिय आंदोलन केवल तब तितर-बितर हो जाते हैं जब उनके नृजातिय गुण, भाषा, संस्कृति अथवा पहचान दूसरों के साथ मिलकर गड्डय-गड हो जायें। एक नृजाति विशेष लोगों में सामूहिक पहचान के बीच एकता की भावना निहित रहती है। उनके अन्दर यह क्षमता होती है कि वे सामूहिक रूप से अपनी नस्ल के लोगों के हितों के लिये संघर्ष करते रहें तथा उन्हें संरक्षण देते रहें।

10.8 नृजातिय आंदोलनों का उदय

यदि किसी देश या समाज में विभिन्न जातीय-समूहों के बीच असमानता विद्यमान हो और ऐसा लगे कि सरकार उसे बढ़ावा दे रही है, अथवा बढावा देने वालों के खिलाफ कोई कदम नहीं उठा रहे तो जातीय-समूह आंदोलन का विकल्प चुनते हैं। आंदोलन का कारण किसी नस्ल विशेष की आर्थिक व राजनैतिक मांगों का ठुकराया जाना ही नहीं होता है, किसी नस्ल की सामाजिक पहचान को खतरा पैदा हो जाना भी आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार करता है (हीथर व ओकामोटो, 2001)।

अंग्रेजी शासन के दौरान तथा स्वाधीनता के उपरांत सरकार द्वारा नीतियाँ लागू करने में यदि नस्ल, भाषा, संस्कृति आदि के आधार पर यदि पूरे समाज को नृजातिय आधार पर बाँटा गया तो सरकार का यह व्यवहार असमानता का था। विभिन्न नृजातिय समूहों के बीच विद्यमान असमानताएँ इन समूहों को यह संदेश भी देती हैं कि अपनी-अपनी पहुँचाने पर अड़े रहे तथा उन्हें और अधिक स्पष्ट करने व अपने महत्व जताने का प्रयास करें वस्तुतः असमानताएँ नृजातिय समूहों को अपने हितों के संरक्षण के लिए एक जुट होकर कारवाई करने को उकसाती है।

यदि किसी देश में सत्ता परिवर्तन हो जाये और उसके कारण नस्ल विशेष के लोगों के हितों की हानि हो जाये तो ये लोग राजनैतिक दखल देने का मन बना लेते हैं। नृजातिय आधार पर लोग एक जुट हो जाते हैं और इनके जातीय नेता इन्हें सत्ताधारियों का विरोध करने को उकसाते हैं।

सत्ता-परिवर्तन के अलावा अन्य अनेक राजनैतिक कारण नृजातिय आंदोलन को बढावा देते हैं। फिर भी यह नहीं माना जा सकता कि नृजातिय आंदोलन राजनैतिक कारणों से ही जन्म लेते हैं। नृजातिय समूह जब अपनी-अपनी जातीय श्रेष्ठता पर इतराने लगते हैं तो उनके बीच नृजातिय टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, बाजारों तथा अन्य संस्थानों में प्रतियोगिता की भावना तीव्र हो जाती हैं जो नृजातिय सीमाओं को सुदृढ करती हैं, और नृजातिय आंदोलन को जन्म देती है।

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में नृजातिय आंदोलनों के उदय के पीछे ऐसे ही कुछ कारण मौजूद हैं जैसे आधुनिकीकरण की होड़, राजनैतिक अर्थव्यवस्था, अंतर्सामुयिक टकराव, संसाधनो के लिए प्रतिस्पर्धा, सामाजिक व नृजातिय श्रेष्ठता स्थापित करने की प्रवृति, एक नस्ल के लोगों का अपेक्षाकृत दूसरों की तुलना में पिछड़ जाता, सांस्कृतिक मतभेद आदि-आदि।

10.9 नृजातिय आंदोलनों के प्रमुख कारण

भारत में हुये नृजातिय आंदोलनों के अध्ययन करते समय समाजशास्त्रियों के मन में यह उत्सुकता जागी कि उनके पीछे अवस्थित कारणों का पता लगाएं। विभिन्न विचारकों ने नृजातिय आंदोलन के अलग-अलग कारण गिनाये हैं। उदाहरण के लिए रजनी कोठारी

(1988) ने आधुनिकीकरण की प्रवृति को नृजातिय आंदोलनों के लिए जिम्मेदार माना हैं। उन्हीं की तरह ज्ञानेंद्र पांडे (1990) तथा हरजोत ओबरॉय (1994) नृजातिय आंदोलनों को आधुनिकता की उपज माना है तथा यह तर्क दिया है कि प्राचीन काल में भारत पहचान के लिए जागरूकता जैसी कोई चीज थीं ही नहीं।

ओमवैल्ट (1990) यह मानने को तैयार नहीं है कि परम्परागत भारत में नृजातिय श्रेष्ठता जैसी कोई चीज नहीं थी। उनका मानना है कि भारत में सदा से ही बहु-संस्कृतिवाद मौजूद रहा। नृजातिय आंदोलनों के मूल में विद्वानों ने जिन कारणों को विशेष रूप से रेखांकित किया है उनका विवरण इस प्रकार है :

1) आर्थिक दशा सुधारने के लिये अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, भारत में विदित सांस्कृतिक तथा भाषाई समूहों का मौजूद रहना तथा अपने-अपने सांस्कृतिक संरक्षण के लिये प्रयास करते रहने की स्थिति।

2) असमान आर्थिक विकास जिसके कारण भारत में कुछ नृजातिय समूहों का विकास ठीक से नहीं हो पाया और वे अत्यधिक पिछड़ गये।

3) जाति और धर्म की राजनीति को बढ़ावा दिया तथा अपने-अपने हितों के लिये अपने समर्थकों के समूह तैयार किये।

4) विभिन्न भाषा-भाषी लोगों तथा विभिन्न धर्मों को मानने वाले नृजातिय समूहों को सदेव यह डर रहा कि कहीं उनकी पहचान गुम न हो जाये, इसीलिये वे अपनी नृजातिय पहचान बनाये रखने के लिये संघर्ष करते रहे।

5) देश में विकास की दो पूर्ण नीतियों का लागू होना। इसने नृजातिय समुदायों को उपेक्षा की ग्रंथि से पीड़ित किया जिसकी वजह से वे अपने पांरम्परिक क्षेत्रों से हट गये और उनके जीवन दरिद्रता और परेशानियों के शिकार हो गये।

10.10 नृजातिय भावना का उद्‌गम

नृजातिय भावना का उद्‌गम विभिन्न मानव समूहों के आपसी संपर्क की प्रक्रिया में निहित है जब अनेक मानव समूह एक दूसरे के साथ मिलते हैं और अपना-अपना प्रभाव छोड़ते हैं तो नृजातिय एहसास में मजबूती आती है। नस्लवाद कितना उभरेगा और कैसा स्वरूप धारण करेगा यह समाज की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। दूसरी बात यह है कि नृजातियता दबे-पिचे मानव समूहों को अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने के लिये बल प्रदान करती है। जब सताया हुआ मानव समूह दूसरे के दवाबों को सहन करने में अधिक कठिनाई का अनुभव करता है तो वह अपनी स्थिति में सुधार लाने का प्रयास करता है, बस यहीं नृजातिय भावना का जन्म होता है। नृजातिय पहचान का एहसास मजबूत हो जाता है और नृजातिय समूह का उदय हो जाता है।

10.11 नृजातिय आंदोलनों के प्रकार

नृजातियता सामाजिक संरचना की प्रक्रिया का एक हिस्सा है। सामाजिक संरचना की प्रक्रिया जैसे आगे बढ़ती जाती है उसमें से अनेक कारणों से जाति समूह उत्पन्न होते रहते हैं। समाज में कुछ तरह के लोगों से संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है, और वे बहुसंख्यक समूह बन जाते है। कुछ तरह के लोगों की संख्या कम होती हैं और वे अल्पसंख्यक समूह बन जाते हैं। दोनों समूहों में नृजातिय विशिष्टताएँ जन्म ले लेती हैं। नृजातिय समूहों का यह प्रकार द्वि-आयामी होता है। एक आयाम में बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक के रूप में पहचान

बनती चली जाती है तथा वर्ग बन जाते हैं। दूसरे आयाम में नृजातिय भावना पर केंद्रित आंदोलन आरम्भ हो जाता है और वह नृजातिय अल्पसंख्यकों के बीच होता है। वे एक-दूसरे से आगे निकलने की कोशिश में कई बार अपनी नृजातिय सीमायें भी लांघ जाते हैं। अब हम नृजातिय भावना के कारण उत्पन्न होने वाले आंदोलनों की सच्चाई को समझने के लिये आंदोलनों के विविध प्रकारों पर विचार करेंगे। मूलतः सभी नृजातिय आंदोलनों को दो धाराओं में विभक्त करके देखा जा सकता है।

10.11.1 बहुसंख्यक नृजातिय आंदोलन

बहुसंख्यकों को नृजातिय आंदोलनों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता हैं। पहली श्रेणी का समूह-आधारित आंदोलन अपने समूह के हितों को बढ़ावा देता है। दूसरे प्रकार का आंदोलन बहुसंख्यकों में जो निचले पायदान पर होते हैं उनके हितों के संरक्षण को केंद्र में रखकर चलता है। तीनों प्रकार का आंदोलन समस्या-केंद्रित आंदोलन होता है। वह उन तथ्यों में बदलाव लाने को प्राथमिकता देता है जिनसे समाज में रचनात्मक बदलाव आ सकते है जैसे शांति, सामाजिक समरसता आदि। चौथे प्रकार का आंदोलन पूरे समूह को केंद्र में रखकर चलता है।

बहुसंख्यक नृजातिय समूहों में अपनी नृजातिय पहचान बनाये रखने के लिए एक जूट हो जाने की चेतना नहीं होती। इसके स्थान पर उनमें राष्ट्रीय-पहचान बनाने की प्रवृत्ति होती है, कभी-कभी यह धार्मिक-आधार पर भी अपनी पहचान बनाने का प्रयास करते हैं। बहुसंख्यकों के आंदोलन दूसरे नृजातिय समूहों के प्रति खासकर अल्पसंख्यकों के प्रति दुश्मनी की भावना से भी होती है। उन्हें ऐसा लगता रहता है कि अल्पसंख्यक उनके सामाजिक-राजनैतिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर को नुकसान पहुंचायेंगे वे अल्पसंख्यकों को अपने-आप से अलग करने लगते हैं, उनकी उपेक्षा करने लगते हैं। वे अल्पसंख्यकों को अपना घोर विरोधी मानते हैं। इस तरह के आंदोलन का सबसे सटीक उदाहरण मणिपुर का नागा आंदोलन है।

नागा विद्रोह 1950 में आरंभ हुआ था। मणिपुर में अनेक नस्लों के लोग निवास करते है, जिनमें नागा, मेटीज़, कुकीज प्रमुख हैं। इस भू-भाग में विभिन्न नृजातिय पहचान वाले लोगों का एक साथ रहना ही जातीय-विद्रोह का कारण बना। यद्यपि नागा आंदोलन का मुख्य उद्देश्य क्षेत्री स्वायत्ता प्राप्त करना था। नागा आंदोलन को अलगाववादी आंदोलन माना जाता है। नागाओं के लिए अलग राज्य बनाने की मांग सात उत्तर-पूर्वी राज्यों के गठन के बाद कुकीज के साथ नागाओं के बीच न सुलझने वाले क्षेत्र सम्बंधी विवाद के कारण उठी मीति जन-जाति के लोगों ने अलग राज्यों के लोग सभी नस्ल के लोगों के लिए एक राज्य चाहते थे। विभिन्न जातीय-समूहों साम्प्रदायिक रूप ले लिया। परिणाम स्वरूप नागा और कुकी जातियों के लोग ईसाई बन गये। जबकि मीति जन-जाति के लोग हिन्दू ही बने रहे अहिंसक आंदोलन लम्बे समय तक चलते रहे। 1997 के बाद नागा और कुकी दोनों जातियों के लोगों ने अलग राज्य की मांग की इससे मणिपुर में बसने वाले अन्य नस्ल के लोगों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई। स्वतंत्र राज्य बनाने की मांग अब तक जारी है।

बोडो आंदोलन नृजातिय आंदोलन का दूसरा महंत्वपूर्ण उदाहरण है। यद्यपि यह आंदोलन ब्रिटिश शासन काल में आरंभ हुआ था, परन्तु इसको समाधान नहीं मिला। 1980 के दशक में इस आंदोलन ने एक बार फिर जोर पकड़ा। बोडो आंदोलन का प्रमुख कारण है बोडो जाति के लोगों का मुख्य समुदाय के लोगों के प्रति भेद-भाव तथा विरोध का रवैया। बोडो जाति के आंदोलन का नेतृत्व करने वाले नेताओं की प्रमुख माँग है जाति के लिए अलग से राज्य का गठन, क्योंकि असम में रहने वाले अन्य जाति-समूहों के साथ उनकी पटरी नहीं

बैठती। 1960 में जब असम की काम-काज की भाषा का लेकर अध्यादेश लाया गया तो बोडो जाति ने इसे अपनी भाषाई पहचान के विरुद्ध माना और इसका विरोध किया। इससे अनेक विद्रोह शुरू हो गये और बोडो समुदाय की माँग कर डाली इनके उद्देश्य थे। असम को दो बराबर-बराबर भागों में बाँटना। 1993 में बोडो आंदोलनकारियों की आवाज को दबाने के विरोध में बोडो समुदाय ने अनेक प्रदर्शन किये। बोडो लेंड सुरक्षा बल ने अपनी जातीय पहचान का सवाल उठाकर संकट बड़ा किया तो टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई और परिणामस्वरूप बहुत लोग मारे गये, बहुत बेघरवार हो गये। अंतत : बोडो लेंड सुरक्षा बल को झुकना पड़ा और 2003 में राज्य के साथ बोडो लेंड सुरक्षा बल की संधि पर हस्ताक्षर हुये तब से लेकर अब तक बोडो समुदाय के लोगों की भाषाई तथा नृजातिय को पहचान सुरक्षा प्रदान करने की दिशा में कोई प्रगति नही हुई है।

10.11.2 अल्पसंख्यकों के नृजातिय आंदोलन

अल्पसंख्यक समुदायों ने अनेक नृजातिय आंदोलनों को जन्म दिया है। ये आंदोलन दोनों प्रकार के रहे हैं। समस्या मूलक भी और जातीय समूह के हितों के संरक्षण से सम्बंधित भी जातीय-समूह के हितों को केंद्र में रख कर किये गये आंदोलनों में नागरिक अधिकारों के लिए आंदोलन, अलगाववादी आंदोलन, आंतरिक वर्गिय टकरावों से जुड़े आंदोलन आदि-आदि। आर्थिक आधार पर मूल्यांकन किया जाये तो निष्कर्ष निकलता है कि प्रायः नृजातिय अल्पसंख्यक अनुसूचित-समूह की श्रेणी में आते है, लेकिन इसके अपवाद भी हैं। जिन जातीय-समूह की आर्थिक स्थिति ठीक-ठाक है, उन्हें भी उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। निश्चित रूप से हमारे देश की शिक्षा-प्रणाली में ही कही कोई बड़ा दोश छिपा है, अन्यथा लोगों में यह विवेक पैदा करना मुश्किल नहीं था कि वे एक देश के नागरिक है, तो मिलकर क्यों नहीं रह सकते क्यों एक दूसरे की भावनाओं का आदर नही कर सकते। यद्यपि आंदोलनों की पहचान इस बात पर निर्भर करती है कि उनमें किस वर्ग के लोग शामिल है तथा आंदोलन का क्षेत्र कौन सा है। इनमें नृजातिय अल्पसंख्यक शामिल होते हैं और इसीलिए इनका उद्देश्य प्रायः उपेक्षित व दबाये जा रहे लोगों के हितों का संरक्षण करना होता है। वे मुख्यधारा से कटे-कटे रहते हैं। समाज के सभी लोगों के साथ घुल-मिल नहीं पाते। इसीलिए वे बहुसंख्यकों के निशाने पर रहते है। प्रमुख रूप से जो समस्यायें अल्पसंख्यकों को आंदोलन की ओर धकेलती है, वे हैं – सामाजिक स्तरीकरण तथा ऊँच-नीच का मामला, अल्पसंख्यकों को दबाकर रखने की प्रवृति, सामाजिक अलगाव कम संसाधनो में गुजारा करने की विवशता आदि।

यद्यपि भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यकों के अलावा किसी अल्पसंख्यक समुदाय ने, (खालिस्तान की मांग अपवाद है) इस तरह का आंदोलन नहीं किया हैं। अकेला मुस्लिम समुदाय जम्मू-कश्मीर में अलग स्वायत्तशाशी राज्य के लिए संघर्षरत है।

10.11.3 बहुसंख्यकों व अल्पसंख्यकों के मिले जुले आंदोलन

इस तरह के नृजातिय आंदोलनों में बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक जाति-समूह साथ-साथ उतरते है। अल्पसंख्यक द्वारा शुरू किये गये आंदोलनों में बहुसंख्यक बड़ी संख्या में शरीक होते हैं तथा बहुसंख्यकों द्वारा आरंभ किये गये आंदोलनों में अल्पसंख्यक साथ के कंधे से कंधा मिलाकर खड़े होते हैं। इस तरह के आंदोलन प्रायः अखंडता के प्रतीक होते है। क्योंकि इनमें दोनों प्रकार के नृजातिय समूहों के हित साझा होते हैं। लेकिन इस प्रकार के आंदोलनों में भी जातलय श्रेष्ठता अनुक्रम, संस्कृति, सत्ता, उद्देश्य को लेकर मतभेद उभर सकते हैं। जब-जब ऐसे आंदोलनों में भाग लेने वाले बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक समुदायों के हित अलग-अलग होते हैं। तब-तब इनके बीच आंदोलन के दौरान ही कई बार टकराव

की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं। नेतृत्व को लेकर भी रस्साकसी की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐसे आंदोलनों में कोशिश यह रहती है कि क्षेत्र के किसी विशिष्ट व्यक्ति को नेतृत्व का दायित्व सौंपा जाये जिसको लेकर दोनों समुदायों के बीच सहमति की स्थिति बनी रहे।

ऊपर तीन प्रकार के आंदोलनों का विवरण दिया गया है। इनके अलावा मिश्रित अल्पसंख्यक तथा मिश्रित बहुसंख्यक भी आंदोलनों में उतर सकते हैं। मिश्रित अल्पसंख्यकों के आंदोलन में अनेक अल्पसंख्यक समुदाय शामिल होते हैं तथा मिश्रित बहुसंख्यकों के आंदोलनों में अनेक बहुसंख्यक समुदायों के लोग शामिल होते हैं। इस प्रकार के मिश्रित अल्पसंख्यक आंदोलनों का नेतृत्व विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के अग्रणी व्यक्ति समस्याओं के आधार पर करते हैं। सभी अल्पसंख्यक जो आंदोलनों में शामिल होते हैं। एक बात पर सहमत होते हैं कि बहुसंख्यकों का दबाव झेल रहे हैं। दूसरी और मिश्रित बहुसंख्यक आंदोलनों में विभिन्न प्रकार के बहुसंख्यक समुदाय शामिल होते है और जातीय श्रेष्ठता का अहसास उन्हें आपस में बाँध रखता है।

बोध प्रश्न 1

नोटः 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) किसी नृजातिय-समूह को किन छः स्तरीय सिद्धांतों के आधार पर नृजातिय समूह की संज्ञा दी जाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

ii) नृजातिय आंदोलन का प्रमुख आधार क्या होता है?

.....

.....

.....

.....

.....

iii) रजनी कोठारी के अनुसार नृजातिय तनाव श्रेष्ठता-अनुक्रम का परिणाम होता है।

.....

.....

.....

.....

iv) नृजातिय आंदोलनों के चार प्रमुख प्रकार कौन-कौन से हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

10.12 सारांश

इस इकाई में हमने भारत के दो बड़े आंदोलनों पर विचार किया। यह हैं – (i) जन-जातीय आंदोलन, (ii) नृजातिय आंदोलन जन-जातीय आंदोलनों के केंद्र में अंग्रजों की पकड़ से अपनी जमीनों को, जंगलों को तथा, संस्कृति को मुक्ति दिलाना था। आज जो आदिवासियों की उपज हैं जो उन्होंने 18वीं शताब्दी उत्तरार्ध में आरंभ किये थे।

जन जातीयों ने जमींदारी-प्रथा से उत्पन्न हुये दबावों का विरोध किया, सत्ताधारियों का तथा ब्रिटिश शासन काल में जनजातियों पर ज्यादतियां करने वाले अफसरों का विरोध किया। सरकार जन-जातीय समुदायों के संसाधनों व हितों की रक्षा नही कर पाई थी, इसीलिए जन-जातीय समुदाय सरकार तथा अन्य सभी दमनकारी तत्वों के विरुद्ध आंदोलन करने के लिए एक जुट हुआ।

इस इकाई में भारत में जन-जातीय आंदोलनों के विभिन्न चरणों का वर्णन किया गया। इन आंदोलनों की प्रकृति के बारे में बताया गया तथा उसके महत्व को रेखांकित किया गया। जनजातियों में जागृति लाने वाले कारकों का विश्लेषण किया गया। इसके साथ ही इस इकाई में नृजातिय आंदोलनों की भी स्पष्ट तस्वीर खींची गई। नृजातिय आंदोलन किन हालात में और कब आरंभ हुए यह भी बताया गया। नृजातियता सामाजिक संरचना का अनिवार्य अवयव है। अत : नृजातिय पहचान को प्राकृतिक नही माना जा सकता। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये नृजातिय आंदोलन के पीछे निहित कारणों व कारकों की पड़ताल भी की गई है, जिनमें आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक कारक प्रमुख हैं। सांस्कृतिक कारक तो हर नृजातिय-समूह की अनिवार्य पहचान होती है। ज्यादातर नृजातिय आंदोलन श्रेष्ठता-अनुक्रम को उसे अंतर्निहित प्रवृति तथा चलन के विरुद्ध थे जो बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक जातीय-समूहों से कभी अलग नहीं हो पाती। इन आंदोलनों का उद्देश्य नृजातिय समूहों की सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पहचान का संरक्षण करना था। राष्ट्र को इनसे कोई खतरा नही था।

10.13 संदर्भ स्रोत

द डायनामिक्स ऑफ एथनिक कम्पटीशन एण्ड कॉन्फिलिक्ट स्टेंड सी.ए.स्टेंड फोर्ड स्टेंड फोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस एस ऑल्जैक (1992)

डायमेन्सन्स ऑफ ट्राइबल मूवमेट्स इन इंडिया ए स्टडी ऑफ उदयांचल इन असम वैली मित्तल, इंटर इंडिया पब्लीकेशन्स एम.सी.पॉल (1985)

इंडियन ट्राइब्स एण्ड इसू ऑफ सोशल इन इनक्लूज़न एण्ड एक्सक्लूज़न, स्टडीज इन ट्राइबल्स, 6(2) पृष्ठ 123-134 - सी.जे.सोनोवांल (2008)

एथनीसिटी एण्ड नेशन-बिल्डिंग इन साउथ एशिया, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स - पी. उर्मिला (1989)

ट्राइबल लॉ एण्ड जस्टिस ए रिपोर्ट ऑफ द सन्थाल्स नई दिल्ली कंसैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी डबल्यू . जी. आर्चर (1984)

ट्राइबल इंडिया नई दिल्ली पालका प्रकाशन एन.हुसैन (1991)

झारखंड मूवमेंट एथनीसिटी एण्ड कल्चर ऑफ साइलेंस, शिमला इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज, एस. बासु (1994)

आदीवासी पॉलिटिक्स इन मिदनापुर 1924-1932 रनजीत गुहा, सुबाल्ट्रन स्टडीज वोल्यूम दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस- एस. दास. गुप्ता (1985)

पॉलिटिकल कॉंसेक्वेन्सेज ऑफ माइनॉरिटी ग्रुप फॉर्मेशन.एन्अुवल रिव्यू ऑफ पॉलिटिक साइंस, 4, 189-215 एम हैचर एण्ड डी ओकामोटो (2001)

स्टेट एगेंस्ट डैमोक्रेसी इन सर्च ऑफ हयूमन गवर्नेस नई दिल्ली अजन्ता पब्लिकेशन आर. कोठारी (1988)

द कंस्टूक्शन ऑफ रिलीजिअस बाउंड्रीज कल्चर आइडेंटिटि एण्ड एंडवर्सिटी इन दे सिख ट्रेडीशन, नई दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस। एच. ओबराय (1994)

द डायनामिकस ऑफ एथनिक कम्पटीशन एण्ड कांफिलिक्ट सी.ए. स्टेनफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस एस. ओल्जैक (1992)

हिन्दुज्म एण्ड पॉलिटिकल इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली वॉल्यूम 25 पृष्ठ 723-29 जी. ऑन्वेल्ट (1990)

डायमेसन्स ऑफ ट्राइबल मूवमेंटस इन असम वैली, मित्तल, इंटर-इंडिया पब्लिकेशन्स एम. सी.पॉल (1985)

बिरसा मुंडा एण्ड हिज मूवमेंट 1974-1901 ए स्टडी ऑफ मिलेनेरियनं मूवमेंट इन छोटा नागपुर कलकत्ता ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रैस के. सुरेश सिंह (1983)

द एथनिक सोर्सेज़ ऑफ नेशनेलिज्म ईन माइकल इ ब्राएन एथनिक कॉनंफिलिक्ट एण्ड इंटरनेशनल सीक्यूरिटी (28-29), प्रिंसटन यूनीवर्सिटी प्रैस प्रिंसटन ए. स्मिथ (1993)

इंडियन ट्राइब्स एण्ड इष्यू ऑफ सोशल इंक्लूज़न एण्ड एक्सक्लूज़न स्टडीज इन ट्राइबल्स, 6(2) पृ. 123-134 सी. जे. सोनोवाल (2008)

एथनिटी एण्ड नेशन-बिल्डिंग इन साउथ एशिया, नई दिल्ली सेज़ पब्लिकेशन्स पी. उर्मिला (1989)।

10.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) जनजातीय आंदोलन सामाजिक आंदोलन होते हैं जो सरकारी नीतियों के विरुद्ध होते है तथा जन-जातीय समुदायों की आजीविका तथा उनकी सामाजिक संरचना को प्रभावित करते हैं।

ii) असत्य

iii) हिंसक आंदोलन तथा अहिंसक आंदोलन ।

iv) 1855

बोध प्रश्न 2

i) 1) समुदाय का नाम

2) साझी विरासत

3) साझी ऐतिहासिक स्मृतियां

4) साझी संस्कृति

5) सुनिश्चित क्षेत्र

6) सामूहिक समरसता

ii) राजनैतिक

iii) असत्य

iv) राजनैतिक असफलता

अन्य संदर्भ

दलित विजन्सः द एंटी कास्ट मूवमेंट एण्ड द कंस्ट्रक्शन ऑफ एन इंडियन आइडेंटिटि ओरियेंट लोंगमेन लिमिटेड, हैदराबाद ओमवैट, गेल (1996) ।

दलित आइडेंटिटि एण्ड पॉलिटिक्स कल्चरल सर्बोडिनेशन एण्ड द दलित चेलैंज वॉल्यूम 2, सेज़ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, लंदन शाह, घनश्याम (2001)

वूमन्स स्टडीज इन इंडिया, पेंग्विन बुक्स दिल्ली एम.ई. जॉन (2008)

द कंटेम्परेरी वूमन्स मूवमेंट एण्ड वूमन्स एजूकेशन इन इंडिया इन इंटर नेशनल रिव्यू ऑफ एजूकेशन, मार्च, वॉल्यूम - 44 इश्यू 2-3, पेज 155-175 इला पटेल (1998)

द डायनामिक्स ऑफ एथनिक कंपटीशन एण्ड कांफिलिक्ट सी.ए. स्टेनफोर्ड, यूनीवर्सिटी प्रैस एस ओल्जैक (1992)

डायमेन्सन्स ऑफ ट्राइबल मूवमेंटस इन इंडिया – ए स्टडी ऑफ उदयांचल इन असम वैली मित्तल इंटर इंडिया पब्लिकेशन्स एम.सी. पॉल (1985)